[illegible] ग्रन्थावली नं० ३१

महाकवि नन्ददास-प्रणीत

रासपंचाध्यायी

और

भँवरगीत

सम्पादक

उदयनारायण तिवारी, एम० ए०, साहित्यरत्न

प्रकाशक

[illegible] प्रेस, दारागंज, प्रयाग

[illegible] [illegible] [[illegible]]

प्रकाशक का वक्तव्य

महाकवि नन्ददास जी की रासपंचाध्यायी और भँवरगीत, सुसम्पादित रूप में, प्रकाशित करने की बहुत दिन से हमारी इच्छा थी। इतने में पंडित जवाहरलाल जी चतुर्वेदी अपनी सम्पादित की हुई रासपंचाध्यायी की पांडुलिपि हमारे पास लाये, और गत वर्ष उक्त चतुर्वेदी जी के निरीक्षण में उसका छपना भी शुरू हो गया, परन्तु कारण विशेष से चतुर्वेदी जी के द्वारा सम्पादित कार्य पूर्णरूप से प्रकाशित न हो सका, और पुस्तक लगभग एक वर्ष से अधिक समय तक प्रेस में ही पड़ी रही।

अस्तु। प्रस्तुत प्रकाशन में "रासपंचाध्यायी" मूल और "रास सम्बन्धी कुछ पद" चतुर्वेदी जी के सम्पादित किये हुए हैं, इसके लिए हम आपके बड़े कृतज्ञ हैं। शेष सम्पादन कार्य हिन्दी के उदीयमान् लेखक और साहित्यमर्मज्ञ पंडित उदयनारायण जी तिवारी ने किया है। आपने कितने परिश्रम और योग्यतापूर्वक यह कार्य किया है, सो रसिक और विज्ञ पाठक स्वयं जान लेंगे।

आशा है कि हिन्दी के प्राचीन साहित्य तथा काव्य के अनुरागियों—और विशेषकर विद्यार्थी और उच्च साहित्य के परीक्षार्थी वर्ग—के लिए यह ग्रन्थ सविशेष रूप से लाभदायक और उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रस्तावना

'रास-पचाध्यायी' तथा 'भँवर-गीत' के रचयिता व्रज कोकिल नन्ददास के जीवन चरित्र से अभी तक हिन्दी संसार एक प्रकार से अपरिचित है। आपका जन्म सम्वत्, वंश परिचय, इत्यादि बातों पर अभी तक सम्यक् प्रकाश नहीं डाला जा सका। सच तो यह है कि अन्य भक्त कवियों की भाँति नन्ददास ने भी अपने सबंध में स्वरचित ग्रन्थों में कुछ भी नहीं लिखा। फिर भी कहीं कहीं आप के सबंध में उल्लेख अवश्य मिलते हैं। इन्हीं उल्लेखों तथा अब तक प्राप्त सामग्री के आधार पर नन्ददास जी के जीवन-चरित्र के सबंध में यहाँ कुछ लिखा जायगा।

जीवन चरित्र

नाभादासकृत भक्तमाल में 'नन्ददास' के सबंध में केवल निम्न लिखित छप्पय मिलता है —

लीला पद रस रीति ग्रन्थ रचना में नागर।
सरस उक्तियुत युक्ति भक्ति रसगान उजागर।
प्रचुर पयध लौं सुजस "रामपुर" ग्राम निवासी।
सकल सुकुल संवलित भक्त पद रेनु उपासी।
चन्द्रहास अग्रज सुहृद, परम प्रेम पै मे पगे।
(श्री) नन्ददास आनन्द निधि, रसिक सु प्रभुहित रँगमगे।

श्री ध्रुवदास जी ने 'भक्त नामावली' में आप के यश का वर्णन करते हुए इस प्रकार लिखा है —

नन्ददास जो कुछ कह्यो, राग रंग में पागि।
अच्छर सरस-सनेह-युत, सुनत सुमन उठि आगि॥

रसिक दशा अद्भुत हुती, करत कवित्त सुन्डार।
बात प्रेम की सुनत ही, छुटै नैन-जल धार॥
बोरो सो रस में फिरै, खोजत नेहिन बात।
आछे रस के वचन सुनि, बेगि बिरस ह्वै जात॥

'मूल गोसाईं-चरित' के रचयिता श्रीवेणीमाधवदास ने आपको कान्यकुब्ज, 'शेषसनातन' का शिष्य तथा गोस्वामी तुलसीदास जी का गुरुभाई लिखा है —

नन्ददास कनौजिया प्रेम मढे। जिन शेषसनातन तीर पढे।
सिच्छा गुरुबंधु भये तेहि ते। अति प्रेम सों आय मिले यहि ते।

गोवर्धननाथ जी की 'प्राकट्य की वार्ता' में नन्ददास के संबंध में यह उल्लेख मिलता है कि श्रीनाथ जी की सेविका 'रूप मजरी' से आप की मित्रता थी और उसी के लिए आपने रूप मजरी नामक ग्रन्थ लिखा।

स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदास द्वारा सम्पादित 'रासपंचाध्यायी' की भूमिका में 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता' से लेकर नन्ददास के संबंध में निम्नलिखित वृत्तान्त प्रकाशित किया गया है —

"नन्ददास सनौढिया ब्राह्मण तुलसीदास के छोटे भाई पूर्व देश के रहनेवाले थे। ये दोनों भाई रामानन्द जी के शिष्य थे। नन्ददास जी विषयासक्त भी बहुत थे। नाचतमाशे में अक्सर पहुँचते थे। एक समय कुछ लोग श्रीरणछोड़ जी (द्वारिका) दर्शन को जाते थे, उनके साथ ये भी तुलसीदास से आग्रह करके दर्शन के लिए चले। मथुरा जी पहुँचकर वहाँ की शोभा देख, मन लुभा गया और यह निश्चय कर कि झटपट द्वारिका जी का दर्शन कर यहाँ लौट आवें और कुछ दिन यहीं आनन्द में बितावें, साथवालों का साथ छोड़ अकेले आगे बढ़े, परन्तु रास्ता भूलकर 'सिंहनद' में जा पहुँचे। वहाँ एक खत्री की बहू अपने घर के दरवाजे में खड़ी बाल सुखा रही थी। उसका रूप देख ये मोहित हो

गये। एक स्थान पर डेरा करके किसी प्रकार रात काटी। सवेरे फिर वहीं पहुँचे, पर उसको न देखा। दिन भर वहाँ अटे, खड़े रहे। सन्ध्या को उस घर की एक लौंडी ने इन्हें बिना अन्न जल खड़े रहने का कारण पूछा। नन्ददास ने कहा कि तुम्हारी बहू के दर्शन के लिए मेरी यह दशा है। लौंडी ने जाकर उससे कहा और बहुत समझाया, तब वह दरवाजे में आई और नन्ददास देखकर चले गये। यों ही नित्य जाते और उसे देखकर लौट आते। शनै होते यह बात सारे नगर में प्रसिद्ध हो गई। उस स्त्री के घरवालों ने बहुत कुछ रोका टोका, पर नन्ददास ने एक न माना और कहा कि बहुत दुख दोगे, तो मैं प्राण दे दूँगा, तुम्हें ब्रह्म हत्या लगेगी। हार कर उन लोगों ने निश्चय किया कि अब इस स्थान को छोड़ श्रीगोकुल में चल रहना ही ठीक है, सो गाड़ी कर बेटा-बहू और लौंडी तथा दो नौकर ले रातोरात वे लोग चुपचाप नगर छोड़कर चल दिए। मगर नन्ददास ने आकर घर में ताला बन्द देखा, तब पता लगा। ये भी गोकुल की ओर चल पड़े और रास्ते ही में उन लोगों से जा मिले और उन लोगों के लड़ने भिड़ने पर भी दूर दूर पीछे लगे चले। श्रीगोकुल के इस पार पहुँच, वे लोग तो नाव पर पार उतर श्रीगोकुल में गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथ जी के पास चले गये। नन्ददास जी इसी पार बैठे रहे और श्रीयमुना जी की स्तुति करते रहे ('नेहकारन जमुने प्रथम आइ' आदि)। श्रीगोसाईं जी ने राग भोग पीछे इन लोगों के प्रसाद लेने के लिए चार पत्तल धरवाईं, तब इन्होंने विनती की कि हम लोग तो तीन ही जन हैं, चार पत्तल किसकी हैं। श्रीगोसाईं जी ने कहा कि जिस एक वैष्णव को तुम लोग उस पार छोड़ आये हो, यह उसकी पत्तल है। यह सुन वे लोग बड़े लज्जित हुए, तब श्रीगोसाईं जी ने कहा कि तुम लोग घबड़ाओ मत। अब वह कुछ न सतावेगा। और अपने एक सेवक को भेजकर नन्ददास जी को बुलवाया। नन्ददास जी की आँखें श्रीगुसाईं जी के दर्शन करते ही खुल गईं और चरणों पर गिर विनती की, कि महाराज! मैं बड़ा अंधा हूँ। सारा जन्म

विषयवासना में बिताया। अब आप अपने शरण में लय, मेरा उद्धार कीजिए। श्रीगुसाईं जी ने श्रीयमुना स्नान कराके उन्हें ब्रह्म मंत्र दिया, तब इनके दिव्य चक्षु खुल गये और श्रीगुसाईं जी की वंदना में पद बनाया ('जयति रुक्मिणिनाथ पद्मावती प्राणपति विप्रकुल छत्र आनन्दकारी' आदि)। फिर महाप्रसाद लेने को बैठे, तो लीला का जो अनुभव हुआ, तो सारी रात बैठे रह गये। पत्तल से न उठे। सबेरे श्रीगुसाईं जी ने आकर कहा—'नन्ददास, उठो, दर्शन का समय हुआ।' तब उठे और श्रीगुसाईं जी की वन्दना की ('प्रात समय श्रीवल्लभसुत को उठतहि रसना लीजिए नाम' आदि)। तब से दर्शन का आनन्द लेते और भगवद्-गुणानुवाद में लगे रहते। तुलसीदास जी ने यह समाचार सुन, नन्द-दास जी को पत्र लिखा। तब इन्होंने उत्तर दिया कि मैं क्या करूँ, आपने तो मेरा विवाह श्रीरामचन्द्र जी से कर दिया था, पर बीच में जबरदस्ती श्रीकृष्ण ने आकर लूट लिया। अब तो सम्बन्ध उनके अर्पण कर चुका। नन्ददास जी ने समग्र दशम स्कंध भागवत की लीला छन्दोबद्ध भाषा में की थी। उसे देख मथुरा के कथा कहनेवाले ब्राह्मणों ने आकर श्रीगुसाईं जी से विनती की कि इस ग्रन्थ से हम लोगों की जीविका मारी जायगी। तब श्रीगुसाईं जी की आज्ञा से 'रासपंचाध्याय' मात्र रखकर और सब ग्रन्थ श्रीयमुना जी में पधरा दिया। एक दिन तानसेन ने नन्ददास का बनाया 'रासलीला' का पद (देखो देखो री नागर नट निर्तत कालिन्दी तट आदि) अकबर के सामने गाया। अकबर ने नन्द-दास को बुलाया और पूछा कि आपने इस पद में गाया है कि 'नन्द-दास गावै तहाँ निपट निकट' सो आप कैसे निपट निकट पहुँचे? नन्ददास जी ने कहा कि इसका भेद अपनी प्रमुख लौंडी से पूछो। बादशाह ने महल में जाकर उस लौंडी से पूछा। वह लौंडी परम वैष्णव थी और उसे श्रीनाथ जी के दर्शन होते थे, तथा उससे नन्ददास जी से बड़ा स्नेह था। बादशाह की बात सुनते ही वह मूर्छित होकर गिरी और शरीर छोड़ दिया। इधर नन्ददास जी ने भी शरीर छोड़ दिया।

बादशाह यह चरित्र देख सन्न हो गया। श्रीगुसाईं जी ने जब यह समाचार सुना, तब बड़ी प्रशंसा की।"

गार्साँ द तासी ने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास* में नन्ददास के संबंध में निम्नलिखित विवरण दिया है —

"गीत-गोविन्द के ढँग पर नन्ददास ने 'पंचाध्यायी' (रासपंचाध्यायी) की रचना की है। इसमें राधाकृष्ण की प्रेम-लीला की ही प्रधानता है। मदनपाल द्वारा सम्पादित पंचाध्यायी का एक संस्करण बाबूराम के लीथो प्रेस, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है। इसमें कुल ५८ पृष्ठ हैं।"

सं० १९९० में 'सुकवि-सरोज' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। इसमें सनाढ्य जाति के साहित्यसेवियों का परिचय और उनकी कविता के उदाहरण दिए गए हैं। इसमें 'रामचरित मानस' के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास तथा नन्ददास भाई भाई एवं सनाढ्य ब्राह्मण माने गए हैं। इसके अनुसार नन्ददास का जन्म संवत् १५६४ के लगभग सोरों जिला एटा के समीपस्थ रामपुर नगर में हुआ था। नन्ददास के पिता रामपुर से हटकर सोरों के योगमार्ग मुहल्ले में रहने लगे। बाद में नन्ददास ने धन सम्पन्न होकर रामपुर को फिर से प्राप्त किया और उसका नाम बदल कर श्यामपुर रख दिया। नन्ददास के पुत्र का नाम कृष्णदास था और वह अपने चाचा तुलसीदास को बुलाने राजापुर गया, किन्तु वे आए नहीं।

'भक्तमाल' की रचना संवत् १६४२ के बाद नाभादास जी ने की थी। इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता के संबंध में अब तक किसी विद्वान् ने कोई आक्षेप नहीं किया है। इसके अतिरिक्त नन्ददास के समकालीन होने के कारण इस ग्रन्थ में दी हुई बात अपेक्षाकृत अधिक मूल्यवान्

*"इस्त्वार द ला लितरत्यौर इंदुई ए इंदुस्तानी," प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३८७-३८८।

हैं। ऊपर 'भक्तमाल' से जो छप्पय उद्धृत किया गया है, उससे नन्ददास की जीवनी सबंधी निम्नलिखित तीन बातें ज्ञात होती हैं —(१) नन्ददास रामपुर गाव के रहनेवाले थे, (२) यह उच्चकुल (अथवा सुकुल आस्पद) के थे, और (३) चन्द्रहास इनके बड़े भाई थे, या ये चन्द्रहास के बड़े भाइ थ, अथवा ये चन्द्रहास के बड़े भाइ के मित्र थे।

श्री ध्रुवदास जी के दोहा से (जो ऊपर उद्धृत किये जा चुके हैं) केवल इतना ही परिलक्षित होता है कि नन्ददास एक सुकवि थे तथा प्रेम की चचा सुनकर पुलकित हो उठते थे।

'मूल गोसाईंचरित' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' में, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, नन्ददास जी को गोस्वामी तुलसीदास का भाई बतलाया गया है। इन्हीं ग्रन्था की प्रामाणिकता के आधार पर सुकवि सरोजकार तथा अन्य कुछ लेखकों ने नन्ददास को तुलसीदास का भाइ लिखा है।

नन्ददास और तुलसीदास

किन्तु अनुसन्धान से 'मूल गोसाईंचरित' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' दोनों क्षेपक ग्रन्थ प्रतीत होते हैं। मूल गोसाईंचरित की ऐतिहासिकता पर विचार करते हुए श्री मातामसाद गुप्त एम० ए० ने अपने 'तुलसी-सन्दर्भ' नामक पुस्तक के २३वें पृष्ठ पर लिखा है —

"वेणीमाधवदास लिखते हैं कि मीन की सनीचरी के उतरते ही (मीन की सनीचरी का अन्त १६७२ वि० के ज्येष्ठ में हुआ था) काशी में मरी का प्रकोप हुआ। उसे गोसाईं जी ने भगवान से विनय करके भगा दिया। मरी के पीछे ही केशवदास गोस्वामी जी के दर्शनार्थ आए और एक ही रात्रि में उन्होंने रामचन्द्रिका ऐसे बड़े काव्यग्रन्थ की रचना कर डाली। इस प्रकार 'मूल गोसाईंचरित' के अनुसार जान पड़ता है, रामचन्द्रिका की रचना सवत् १६७३ के लगभग हुई है, किन्तु यह नितान्त अशुद्ध है, क्योंकि उक्त ग्रन्थ में ही स्पष्ट शब्दों में लिखा हुआ है कि उसकी रचना सवत् १६५२ में कार्तिक सुदी १२ बुधवार

को समाप्त हुई, इसे इन्द्रजीतसिंह ने बनवाया था। अतएव 'मूल गोसाईं चरित' का उल्लेख इस विषय में अत्यन्त अपूर्ण ज्ञात पड़ता है।"

'मूल गोसाईं चरित' की ऐतिहासिकता पर विचार करने का एक और ढंग है। वह है इसके व्याकरण के ढाँचे का अध्ययन। इस प्रकार के अध्ययन से इसके काल निर्णय में अमूल्य सहायता मिलती, किन्तु स्थानाभाव से यहाँ इस बात का प्रयत्न न किया जा सकेगा। मेरा तो इस ग्रन्थ के विषय में यही अनुमान है कि गोस्वामी जी की मृत्यु के बहुत दिनों पश्चात् इसका निर्माण हुआ और उसके कर्ता ने तुलसीदास जी के सम्बन्ध में उस समय तक प्रचलित समस्त किंवदन्तियों का समावेश इसमें अत्यन्त चतुरता के साथ कर दिया है।

इसी प्रकार 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' की ऐतिहासिक प्रामाणिकता पर डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा एम० ए० का एक बहुत ही गवेषणापूर्ण लेख 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका में अप्रैल १९३२ में प्रकाशित हुआ है। उसका शीर्षक है—"क्या 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' गोकुलनाथ कृत है ?" उस लेख में डाक्टर साहब लिखते हैं—"अब मैं एक ऐसा प्रमाण देना चाहता हूँ, जो व्यापक रूप से समस्त ग्रन्थ पर लागू होता है और जिससे स्पष्ट रीति से यह सिद्ध हो जाता है कि ८४ वार्ता तथा २५२ वार्ता के रचयिता दो भिन्न भिन्न व्यक्ति थे और २५२ वार्ता निश्चित रूप से सत्रहवीं शताब्दी के बाद की रचना है। 'ब्रजभाषा का विकास' शीर्षक शोध ग्रन्थ की सामग्री जमा करते समय मैंने चौरासी तथा दो सौ बावन वार्ताओं के व्याकरण के ढाँचों का भी अध्ययन किया था। इस अध्ययन में मुझे यह बात आश्चर्यजनक मालूम हुई कि इन दोनों वार्ताओं के व्याकरण के अनेक रूपों में बहुत अन्तर है।"

इसके बाद व्याकरण के रूपों तथा वाक्यों की तुलना करते हुए वर्मा जी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि दो सौ बावन वार्ता गोकुलनाथ

कृत नहीं हो सकती। कदाचित् चौरासी वार्ता के अनुकरण में सत्रहवीं शताब्दी के बाद किसी वैष्णव भक्त ने इसकी रचना की होगी।

वार्ता की प्रामाणिकता पर दूसरे ढंग से विचार करते हुए हिन्दी के विद्वान् आलोचक तथा इतिहास-लेखक पंडित रामचन्द्र शुक्ल भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। आप अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में लिखते हैं—

"गोस्वामी जी का नन्ददास जी से कोई सम्बन्ध न था, यह बात पूर्णतया सिद्ध हो चुकी है। अतः उक्त वार्ता की बातों को, जो वास्तव में भक्तों का गौरव प्रदर्शित करने और वल्लभाचार्य की गद्दी की महिमा प्रकट करने के लिए पीछे से लिखी गई हैं, प्रमाण कोटि में नहीं ले सकते।"

ऊपर वार्ता की प्रामाणिकता के विषय में लिखा जा चुका। अब यह बात स्पष्ट हो जाती है कि केवल साम्प्रदायिक गौरव को स्थापित करने के लिए वार्ता में तुलसीदास से नन्ददास जी के भाई होने का संबंध जोड़ा गया है, पर वास्तव में नन्ददास जी का तुलसीदास जी के साथ कोई संबंध नहीं था। ऐसा जान पड़ता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी की अत्यधिक प्रतिष्ठा-संवृद्धि होते देखकर पीछे से किसी वैष्णव भक्त ने उनका नन्ददास जी के साथ इस प्रकार का संबंध जोड़ दिया है।

अस्तु। अब तक उपलब्ध सामग्री के आधार पर नन्ददास के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि गोसाईं विठ्ठलनाथ का शिष्यत्व ग्रहण करने के पूर्व आपका जीवन वासनात्मक था। किन्तु इसके बाद तो वे कृष्णप्रेम की ओर इतने आकृष्ट हुए कि उनकी गणना अष्टछाप* में होने लगी। आप 'रामपुर' गाँव के रहनेवाले उच्चकुल (अथवा सुकुल

---

* अष्टछाप के अन्तर्गत निम्नलिखित भक्त कवियों के नाम आते हैं—

(१) श्रीसूरदास, (२) श्रीकृष्णदास, (३) श्रीपरमानन्ददास, (४) श्रीकुम्भनदास, (५) श्रीचतुर्भुजदास, (६) श्रीनन्ददास, (७) श्रीगोविन्द स्वामी (८) श्रीछीत स्वामी।

इनमें से प्रथम चार श्रीवल्लभाचार्य के तथा शेष चार श्रीविट्ठलनाथ जी के शिष्य थे।

आनन्द) के थे, और आपके भ्राता का नाम चन्द्रहास था अथवा आप चन्द्रहास के बड़े भाई के मित्र थे। पुष्टिमार्गीय होजाने के पश्चात् आप श्रीनाथ जी की सेवा करते हुए गोवर्धन तथा गोकुल में रहने लगे। श्रीनाथ जी की सेविका रूप मञ्जरी से आप की मित्रता थी। आप गोसाईं विट्ठलनाथ तथा सूरदास के समकालीन थे अतएव इनके काल के सम्बन्ध में हम इतना ही कह सकते हैं कि ये १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वर्त्तमान थे।

नन्ददास जी ने कुल कितने ग्रन्थ लिखे हैं, इस विषय में अभी तक पूरा पूरा पता नहीं चला है। अब तक जो खोज हुई है उसी के आधार पर यहां कुछ लिखा जाता है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित खोज की रिपोर्टों से आप के निम्न लिखित १५ ग्रन्थों का पता लगता है —

नन्ददास की रचनायें

(१) 'अनेकार्थ मञ्जरी'
(२) 'नाममाला'
(३) 'नासिकेतपुराण भाषा'
(४) 'दशमस्कन्ध'
(५) 'पञ्चाध्याई'
(६) 'भँवरगीत'
(७) 'भागवत'
(८) 'मानमञ्जरी'
(९) 'रसमञ्जरी'
(१०) 'रूपमञ्जरी'
(११) 'विरहमञ्जरी'
(१२) नाम चिंतामणिमाला'
(१३) 'श्यामलीला'
(१४) 'श्याम-सगाई', और
(१५) 'रुक्मिनी-मंगल'

'गार्सां द तासी' ने अपने ग्रन्थ में नन्ददास के केवल चौदह ग्रन्थों के नाम और विवरण दिए हैं। इनमें से दस तो खोज रिपोर्टों वाले १, २, ४, ५, ६, ८, ६, १०, १३ व १५ नं० के ग्रन्थ हैं। जिन चार और नए ग्रन्थों का उल्लेख तासी ने किया है उनके नाम नीचे दिए जाते हैं —

(१) 'सुदामाचरित'
(२) 'प्रबोध चन्द्रोदय नाटक'
(३) 'गोवर्धनलीला'
(४) 'रासमंजरी'

खोज के ग्रन्थ नं० ३,७,११,१२ तथा १४ के नाम तासी की पुस्तक में मौजूद नहीं हैं। ठाकुर शिवसिंह ने अपने 'सरोज' में नन्ददास के सात ग्रन्थों के नाम दिए हैं। इनमें से ऊपर दिए गए ग्रन्थों के अतिरिक्त दो और नए ग्रन्थ 'दानलीला' तथा 'मानलीला' के नाम मिलते हैं। इसी प्रकार 'मिश्रबन्धु विनोद' में भी नन्ददास के दो और नवीन ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। इनके नाम 'ज्ञानमंजरी' और 'विज्ञानार्थ प्रकाशिका' हैं। 'विज्ञानार्थ प्रकाशिका' संस्कृत ग्रन्थ की ब्रजभाषा टीका बतलाई गई है। 'सुकवि-सरोज' के संपादक ने नन्ददास के एक और नवीन ग्रन्थ 'हितोपदेश' का उल्लेख किया है।

इस प्रकार नन्ददास द्वारा रचित कुल चौबीस ग्रन्थों का पता लगता है। किन्तु खोज से पता चला है कि इनमें से 'नाममाला', 'नाम चिन्तामणि माला' तथा 'मानमंजरी' ये तीन भिन्न भिन्न पुस्तकें नहीं हैं, किन्तु वास्तव में एक ही पुस्तक के ये तीन भिन्न भिन्न नाम हैं। नन्ददास की एक नवीन रचना 'सिद्धान्त-पंचाध्यायी' की हस्तलिखित प्रति का भी पता चला है। अस्तु। एक नामवाले दो ग्रन्थों को निकाल देने से तथा 'सिद्धान्तपंचाध्यायी' को भी सम्मिलित कर लेने से नन्ददास द्वारा विरचित कुल तेइस ग्रन्थ होते हैं। इन ग्रन्थ-रत्नों में

ने अब तक 'अनेकार्थ मंजरी', 'नाम माला', 'रास-पंचाध्यायी', 'भँवर गीत', 'रुक्मिणी मंगल' और 'श्याम सगाई' ये छः ग्रन्थ मुद्रित हो चुके हैं।

किसी कवि के मानसिक विकास एवं उसकी काव्यकला के अध्ययन के लिए उसकी रचनाओं का कालक्रम के अनुसार अध्ययन आवश्यक होता है, किन्तु अब तक उपलब्ध सामग्री के आधार पर नन्ददास की रचनाओं का कालक्रम चला सकने में हम सफल नहीं हो सके। इस प्रकार के चिह्न के अभाव में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि पंचाध्यायी की रचना कब हुई। किन्तु इस ग्रन्थ के आरम्भ में ही कवि ने इसकी रचना के संबंध में एक कारण दिया है—

रासपंचाध्यायी की रचना के कारण

परम रसिक इक मित्र मोहि तिन आग्या दीनी।
ताही तें यह कथा जथामति भाषा कीनी॥

नन्ददास जी का यह मित्र कौन था? यह कहीं 'चन्द्रहास' के बड़े भाई तो नहीं थे? कुछ लोगों का अनुमान है कि विट्ठलनाथ जी की शिष्या 'गंगाबाई' तथा नन्ददास जी में घनिष्ट मैत्री थी और उन्हीं के कहने पर उन्होंने रासपंचाध्यायी की रचना की। केवल अनुमान तथा कल्पना पर ही अवलम्बित होने से इसके संबंध में निश्चितरूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

पंचाध्यायी के प्रथम अध्याय के आरम्भ में संसार दुःखों से संतप्त प्राणियों के लिए श्रीमद्भागवत का प्रगट करने वाले करुणासागर श्रीशुकदेव जी के नख शिख का वर्णन है। तत्पश्चात् कवि ने वृन्दावन का एक अत्यन्त आदर्श तथा रमणीक वन के रूप में वर्णन करते हुए विविध आभूषणों से अलंकृत किशोर श्रीकृष्णचन्द्र के सौन्दर्य को अङ्कित किया है। इसके बाद ही शरद-रजनी तथा चन्द्रोदय का वर्णन नितान्त स्वाभाविक ढंग से किया गया है। इसी समय चराचर को

रासपंचाध्यायी का कथानक

मोहने वाली कृष्ण की मुरली बज उठती है। फलतः सभी व्रजगोपिकायें आकृष्ट होकर रास करने के लिए आ पहुँचती हैं। वहां पर कृष्ण का दर्शन करके व प्रेम में पग जाती हैं। इसी अवसर पर रसिकशिरोमणि श्रीकृष्ण जी गोपियों को प्रिया का धर्म तथा कर्तव्य समझाने लगते हैं। बस, इस वक्रवचन के सुनते ही गोपियों का दुःख सागर उमड़ पड़ता है। यहाँ पर कवि ने गोपियों की दशा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। वे कभी कृष्ण से अनुनय विनय करती हैं, कभी उपालम्भ देती हैं और कभी 'अधरामृत' के न मिलने पर 'विरह पावक' में जल मरने का धमकी देती हैं। अन्त में, 'नवनीत' के समान कृष्ण का कोमल हृदय पिघल उठता है और वे गोपियों की बात मानकर कुञ्ज में विहार करते हैं।

रासलीला में कृष्ण को मग्न देखकर तथा अच्छा सुअवसर जानकर ब्रह्मादिक को पराजित करने वाला अनङ्ग आ पहुँचता है, किन्तु कृष्ण तुरन्त ही मदन का मान मर्दन कर देते हैं। ऐसा अद्भुत कार्य करने वाले कृष्ण से मिलकर गोपियों को किंचित् अभिमान आ जाता है। यह देखकर नट नागर कुछ देर के लिये अन्तर्हित हो जाते हैं। यहां पञ्चाध्यायी का प्रथम अध्याय समाप्त होता है।

'रास-पञ्चाध्यायी' के द्वितीय अध्याय का नाम श्रीमद्भागवतकार ने 'कृष्णान्वेषण' बहुत ही उपयुक्त रक्खा है। यह अध्याय विप्रलम्भ शृङ्गार का एक अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें कुञ्ज-कुञ्ज में लता-वृक्षों से कृष्ण का पता पूछती हुई गोपियों का चित्रण किया गया है। यह वर्णन सरस, हृदय द्रावक तथा करुणरस से ओत प्रोत है।

तृतीय अध्याय में कवि ने गोपियों की व्याकुलता का बड़ा ही कलापूर्ण चित्र खींचा है। वे बारम्बार कृष्ण से दर्शन देने के लिये प्रार्थना करती हुई प्रलाप करती हैं। स्थान-स्थान पर गोपियों का व्यंग बहुत ही सुन्दर है।

चतुर्थ अध्याय में श्रीकृष्ण के पुनः प्रकट होने का वर्णन है। गोपियाँ परम उत्सुकता एवं उमंग के साथ उनसे मिलती हैं और अत्यन्त प्रसन्न होती हैं। इसका चित्रण स्वाभाविक तथा मनोमोहक है। मुसकाती हुई गोपियाँ श्रीकृष्ण से व्यंगपूर्वक पूछती हैं कि आप इतना कष्ट क्यों देते हैं? तब श्रीकृष्णजी अपने को गोपियों का परम ऋणी बतलाते हैं और अपने इस प्रकार के व्यवहार के लिये उनसे क्षमा याचना करते हैं।

पंचाध्यायी के पाँचवें अध्याय में कवि ने कृष्ण की रासलीला का बड़ा ही मनोरम चित्र खींचा है। वर्णन इतना सजीव है कि रास का दृश्य नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। आगे चल कर यह रास लीला जलक्रीड़ा में परिणत हो जाती है और इसके पश्चात् प्रात:काल के पूर्व 'ब्राह्म मुहूर्त' में गोपियाँ अपने अपने घर प्रस्थान करती हैं। अन्त में 'फलस्तुति वर्णन' के साथ-साथ इस ग्रन्थ की समाप्ति होती है।

नन्ददास-कृत रासपंचाध्यायी के कथानक का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध का पूर्वार्ध—अध्याय उन्तीस से लेकर अध्याय तैंतीस तक है। श्रीमद्भागवत के रास-सम्बन्धी ये पाँच अध्याय अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। नन्ददास जी की पंचाध्यायी का विषय एवं क्रम भी सर्वथा श्रीमद्भागवत के अनुसार है और कहीं कहीं इनके पद भागवत के श्लोकों से बहुत मिलते हैं। इस विषय पर आगे पूर्णतया विचार किया जायगा।

रास पंचाध्यायी के कथानक का आधार

रास-पंचाध्यायी का दूसरा आधार हरिवंश पुराण माना जाता, क्योंकि उस पुराण के विष्णु पर्व में उसी रास का वर्णन है जिसका वर्णन नन्ददास जी ने अपनी पंचाध्यायी में किया है। पुराण में उसका नाम "हल्लीस नर्तन" दिया गया है। इसी रास के आधार पर हम रासपंचाध्यायी को हरिवंश पुराण का ऋणी मान सकते हैं।

पचाध्यायी का तृतीय आधार जयदेव का 'गीतगोविन्द' कहा जाता है। यद्यपि गीतगोविन्द और रास पचाध्यायी के कथानक में आकाश-पाताल का अन्तर है, तथापि दोनों की प्रवाह-गति, मधुरता और शैली एक ही साँचे में ढली हुई है। नन्ददास जी ने कदाचित् गीतगोविन्द के माधुर्य के वशीभूत होकर ही अपने काव्य की रचना की है। दोनों की मधुरता का ढंग एक ही है।

ऊपर हम रास पचाध्यायी के कथानक के आधार पर विचार कर चुके हैं। अब यहाँ इस बात पर विचार करना है कि पचाध्यायी श्रीमद्भागवत पर कहाँ तक अवलम्बित है। इस बात को निश्चित रूप से कहना अत्यन्त कठिन है कि पचाध्यायी की रचना में नन्ददास ने 'हरिवंशपुराण' तथा 'गीतगोविन्द' से कितनी सहायता ली है, किन्तु इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं कि इसकी रचना के समय कवि के सम्मुख पुष्टिमार्गियों के मान्य ग्रन्थ श्रीमद्भागवत के रास क्रीड़ा सम्बन्धी अध्याय सदैव वर्तमान रहे। इस कथन के प्रमाण-स्वरूप नीचे कुछ उद्धरण दिये जाते हैं—

रास पचाध्यायी तथा श्रीमद्भागवत

ताही छिन उडराज उदित रस रास सहायक।
कुंकुम मंडित प्रिया-बदन जनु नागर नायक॥

रा० प० अ० १–४१

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः॥

श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० २६–२

कोउ तरुनी गुनमै सरीर तजि मग चली झुकि।
मात पिता पति बन्धु रहे झुकि झुकि न रही रुकि॥

रा० प० अ० १–६८

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः।
गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः॥

श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० २६–८

इहि विधि बन-बन ढूँढ़ि बूझि उनमत की नाईं।
करन लगीं मन हरन-लाल-लीला मनभाईं ॥

—रा० प० अ० २-२१

इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः।
लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३०-१४

क्वासि क्वासि पिय महाबाहु, यौं बदति अकेली।
महाविरह की धुनि सुनि रोवत खग मृग बेली ॥

—रा० प० अ० २-४९

हा नाथ रमणप्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३०-३९

सतत भ्रमैं न श्रमैं करन, कर कमल तिहारौ।
जा घटि जहँ नाथ तनक सिर छुवत हमारौ ॥

—रा० प० अ० ३-१५

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात्।
करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३१-५

तब तिनहीं में प्रगट भए नँदनंदन पिय यौं।
दृष्टि बंद करि दुरैं बहुरि प्रगटै नटवर ज्यौं ॥
पीत बसन बनमाल धरें, (अरु) मंजु मुरली कर।
मंद मंद मुसिकात, निपट मनमथ के मन हर ॥

—रा० प० अ० ४-२, ३

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३२-२

इक भजते कौं भजे, एक बिनु भजते भजहीं।
कहो कृष्ण वे कौन आहि जो दोउन तजहीं॥

—रा० प० अ० ४-२२

भजतोऽनुभजन्त्येके एक एतद्विपर्ययम्'।
नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भो॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३२-१६

रतनावलि-मधि नील मनी अदभुत झलकै जस।
सकल तियन के मध्य साँवरौ पिय सोभित अस॥

—रा० प० अ० ५-६

तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान्देवकीसुत।
मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३३-७

धाय जमुनजल धँसे, लसे छवि परहि न बरनी।
विहरत ज्यों गजराज, संग लै तरनी करनी॥

—रा० प० अ० ५-४६

ततश्च कृष्णोपवने जलस्थलप्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे।
चचार भृङ्ग प्रमदागणावृतो यथामदच्युद्द्विरदः करेणुभिः॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३३-२२

इन ऊपर के उद्धरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पंचाध्यायी की रचना में नन्ददास ने श्रीमद्भागवत के रास लीला सम्बन्धी पंचाध्यायी की अध्यायों से कहाँ तक सहायता ली है। स्थान संकोच मौलिकता के कारण बहुत से उद्धरण ऊपर नहीं दिये जा सके, फिर भी यहाँ पर इतने ही उदाहरण पर्याप्त हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या पंचाध्यायी श्रीमद्भागवत का रूपान्तर मात्र है? इसके उत्तर में इतना ही कहा जा सकता है कि पंचाध्यायी का तृतीय अध्याय श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध के ३१ वें अध्याय पर बहुत कुछ

अनलम्बित हैं, किन्तु शेष अध्यायों की पद रचना में भी यत्र तत्र कवि ने भागवत का यथेच्छ अनुकरण किया है। इतना होने पर भी पंचाध्यायी की मौलिकता अक्षुण्ण है। प्रथम अध्याय में श्री शुकदेव जी का नख शिख वर्णन, वृन्दावन का दृश्य चित्रण तथा अनंग आगमन इत्यादि प्रसंगों में नन्ददास की मौलिकता और प्रतिभा का पूर्ण परिचय मिलता है।

इसी प्रकार पंचाध्यायी के चतुर्थ अध्याय के अन्त में गोपियों के प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् अपने को उनका ऋणी बतलाते हैं, किन्तु श्रीमद्भागवत में आप केवल उनकी प्रशंसा करके ही समाप्त कर लेते हैं। पंचाध्यायी के पंचम अध्याय का फलश्रुतिवर्णन तो इसे सर्वथा एक स्वतंत्र ग्रन्थ सिद्ध कर देता है। श्रीमद्भागवत में यह अंश नहीं है। वहाँ तो राजा परीक्षित श्री शुकदेव जी से यह प्रश्न करते हैं कि धर्म-संस्थापक साक्षात् ईश्वर के अवतार भगवान् कृष्ण चन्द्र ने परस्त्रियों के साथ इस प्रकार का आचरण कैसे किया —

> संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च।
> अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वर ॥
> स कथं धर्मसेतूनां वक्ताकर्ताऽभिरक्षिता।
> प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥
> आप्तकामो यदुपतिः कृतवान्वै जुगुप्सितम्।
> किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत ॥
> श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा०अ० ३३–२७, २८, २९

इसके समाधान में श्री शुकदेव जी कहते हैं कि तेजस्वी पुरुषों को किसी प्रकार दोष नहीं लगता। वे तो सर्वभक्षण करने वाली अग्नि के समान सर्वथा स्वतंत्र हैं —

> धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम्।
> तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥
> श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३३–३०

रास-क्रीड़ा सम्बन्धी अन्तिम अध्याय को समाप्त करते हुए श्रीमद्भागवतकार कहते हैं, कि जो 'व्रज-वधुओं' तथा 'विष्णु' की क्रीड़ा-सम्बन्धी कथा को श्रद्धापूर्वक सुनते तथा वर्णन करते हैं वे परा भक्ति को प्राप्त करके भव-रोग से मुक्त हो जाते हैं —

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः,
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः ।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं,
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥

नन्ददास भी पंचाध्यायी की समाप्ति इसी प्रकार करते हैं —

इहि उज्ज्वल-रस-माल, कोटि जतनन करि पोई।
सावधान ह्वै पहिरौ, यह तोरौ मति कोई ॥
स्रवन, कीरतन, ध्यान-सार, सुमिरन कौ है पुनि।
ग्यान सार, हरि ध्यान-सार, स्रुति-सार, गुही गुनि ॥
अघ-हरनी, मन हरनी, सुन्दर-प्रेम-वितरनी।
"नन्ददास" के कंठ बसौ, नित मंगल-करनी ॥

भागवत का रास-क्रीड़ा-सम्बन्धी अंश हिन्दी के मध्यकालीन कवियों का इतना प्रिय विषय रहा है कि कई कवियों ने इसे लिखकर अपनी लेखनी को पवित्र किया है। नन्ददास ही की भांति 'सोमनाथ' कवि ने भी 'रास-पंचाध्यायी' की रचना की है। श्रीमद्भागवत पर ही अवलम्बित होने के कारण दोनों कवियों के वर्णन प्राय: एक से हैं और कहीं कहीं यह कहना अत्यन्त कठिन हो जाता है कि किसका वर्णन उत्कृष्ट है। इतने पर भी सोमनाथ की पंचाध्यायी अब तक अप्रकाशित ही है। तुलना के लिये दोनों कवियों के कतिपय पदों को नीचे उद्धृत किया जाता है। भगवान कृष्ण के रास का वर्णन करते हुए, चन्द्रोदय का वर्णन प्राय: एक सा ही किया है —

नन्ददास तथा सोमनाथ

ताही छिन उड़राज उदित, रस रास सहायक।
कुंकुम मण्डित प्रिया वदन, जनु नागर नायक ॥
कोमल किरन अरुन, नभ बन में व्यापि रही यों।
मनसिज खेल्यौ फागु, घुमरि घुरि रह्यौ गुलाल ज्यों ॥
(नन्ददास)

तियाँ मनोरथ रमन को, निज माया अपनाय,
ता छन चन्द उदै भयौ, पूरब दिशा रचाय।
मढी घेर में तिय मिली, यातें हिय हुलसाय,
नायक मनु मुख मढ़ लहि, दिय कुमकुम लपटाय।
(सोमनाथ)

गोपियों के अधीर होने का वर्णन भी दोनों कवियों का उत्कृष्ट एवं समान हो हुआ है —

ते पुनि तिहि मग चली, रँगीली तजि गृह संगम।
जनु पिंजरन तें छुटे, छुटे नव प्रेम विहंगम ॥
कोउ तन्नी गुन मै सरीर, तिन संग चली झुकि।
मात पिता पति बन्धु रहे झुकि, झुकि न रही रुकि ॥
लोचन सरिता रुकै कहूँ करी कोटि-जतन अति।
कृष्ण हर लिन के मन ते कहा रुक अगम गति ॥
(नन्ददास)

खैंचि लिया मन कुंज बिहारी,
लोकलाज ब्रज तियन बिसारी।
निज निज गृह तैं इहि विधि डगरी,
मिल्यौहि मिलन सरित ज्यों सागरी।
जनु पिंजरा तैं छुटी चिरैयाँ,
विविध रंग नहिं घिरें घिरैयाँ।

पति पितु मातु बन्धु की हटकी,
रहि न सकी स्याम सा अटकी ।

(सोमनाथ)

भारतीय साहित्य मे जितना कृष्ण-चरित्र जटिल एव गम्भीर है उतना सम्भवत दूसरा नहा। यदि महाभारत मे श्रीकृष्ण एक चतुर पञ्चाध्यायी में कृष्ण राजनीतिज्ञ तथा महान् दार्शनिक के रूप में वर्तमान का स्वरूप हैं तो श्रीमद्भागवत तथा हरिवंश पुराण म उनका शक्तिमय रूप हो जाता है। लोक कल्याण के लिए वे अनेक असुरो का सहार करते हैं। आगे चलकर पुराणो म ही कृष्ण के लीलामय रूप का भी दर्शन होता है और वास्तव म भाषा-साहित्य का इसी रूप से सम्बन्ध है।

भाषा साहित्य म कृष्ण का एक रूप हमे मैथिल-कोकिल विद्यापति म मिलता है। आप न सस्कृत मे कोमल-कान्त-पदावली के अधिनायक अमर कवि जयदेव के आदश पर ही राधा तथा कृष्ण के प्रेम को अकित किया है जिसम प्रधान रूप से शृङ्गार-रस की अभिव्यजना हुइ है। विद्यापति के प्राय अधिकाश पद एक मात्र लौकिक प्रेम के ही अग प्रत्यग स्वरूप हैं, किन्तु आपने कतिपय ऐसे पदों की भी रचना की है जिसम राधाकृष्ण के अलौकिक प्रेम का वर्णन है। मिथिला मे विद्यापति चाहे भले ही वैष्णव कवि के रूप मे प्रख्यात न हो, किन्तु चडीदास के पथ प्रदर्शक होने के कारण आप बगाल मे वैष्णव तथा भक्त कवि ही के नाम से विख्यात हैं।

भगवान् कृष्ण के दूसरे रूप का दर्शन हमे पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी मे होता है। इस काल मे कृष्ण भक्ति की एक लहर समस्त भारत को आप्लावित कर देती है। श्रीमद्भागवतकार ने वासुदेव-भक्ति को मद, यज्ञ, ज्ञान तथा तप आदि से श्रेष्ठ बतलाया है —

वासुदेव परा वेदा वासुदेव परा मखा ।
वासुदेव परा योगा वासुदेव परा क्रिया ॥

वासुदेव परं ज्ञानं वासुदेवं परं तपः ।
वासुदेव परो धर्मो वासुदेव परा गतिः ॥

वास्तव में इस युग में भागवतकार की उपर्युक्त पुकार का अक्षरशः पालन हुआ । हम इसे 'भक्तियुग' कह सकते हैं । इस युग में वृन्दावन वैष्णव धर्म का केन्द्र बना जिसके फलस्वरूप ब्रजभाषा में अनेक भक्त कवि उत्पन्न हुए । सूरदास तथा नन्ददास इन कवियों में अग्रगण्य थे । आगे चलकर 'रीति-काल' में कृष्ण के इस रूप में भी परिवर्तन हुआ । इस काल में वे भक्तों के आराध्य देव न होकर नायक बन गये और राधा नायिका बन गई । रीतिकाल के समस्त कवियों—जैसे बिहारी तथा देव आदि ने भगवान् कृष्ण को इसी रूप में अंकित किया और 'कन्हैया' शब्द एक प्रकार से 'नायक' का पर्यायवाची हो गया । श्रेणी विभाजन की दृष्टि से हम इसे कृष्ण का तीसरा रूप कह सकते हैं ।

कविवर नन्ददास ने भगवान् कृष्ण के दूसरे रूप को ही ग्रहण किया है । वे वास्तव में एक भक्त कवि हैं । शृंगार रस का प्राचुर्य होने के कारण कतिपय आलोचक उनके काव्य में लौकिक पक्ष की प्रधानता मानते हैं, किन्तु यदि विचार करके देखा जाय तो नन्ददास एक धार्मिक कवि थे । 'पुष्टिमार्ग' से उन्हें कृष्ण-चरित का जो सुन्दर अंश प्राप्त हुआ था, उसी ने उन्हें काव्य-रचना की ओर प्रेरित किया । इसलिए पारलौकिक पक्ष का सर्वथा त्याग कर केवल लौकिक दृष्टि से ही नन्ददास पर विचार करना उनके साथ अन्याय करना होगा । नीचे इन दोनों दृष्टियों से नन्ददास कृत 'रास-पंचाध्यायी' पर विचार किया जायगा ।

लौकिक दृष्टि से पंचाध्यायी संयोग शृङ्गार की एक सजीव रचना है जिसमें कृष्ण तथा गोपियों की रासक्रीड़ा का वर्णन है । सुधा पंचाध्यायी में वर्णित मुरली ध्वनि सुन ज्योत्स्ना विमण्डित रात्रि लौकिक पक्ष में गोपियां उत्सुक होकर कृष्ण-दर्शन के लिए घर से निकल पड़ती हैं । प्रेम में तल्लीन होने के कारण उन्हें लोक-मर्यादा का

ध्यान तक नहीं रहता। वे कृष्ण के सन्निकट पहुँच कर उनके चारों ओर खड़ी हो जाती हैं। इसी समय चतुर नायक, लीला प्रिय, श्रीकृष्ण को कुछ 'वक्रता' सूझती है। वे गोपियों को स्त्री धर्म की शिक्षा देकर उन्हें घर लौट जाने के लिए कहते हैं। गोपियों को कृष्ण के इस व्यवहार से बड़ा आघात पहुँचता है। वे स्तब्ध होकर खड़ी हो जाती हैं। उनके बिम्बोष्ठ मुरझा जाते हैं तथा विरह के कारण वे दीर्घ निश्वास लेने लगती हैं —

जबै कह्यौ पिय जाउ, अधिक चित चिंता बाढ़ी।
पुतरिन की सी पाँति, रहि गईं इकटक ठाढ़ी॥
दुख सों दवि छवि-सींव, ग्रीव ल चलीं नाल सी।
अलक-अलिन के भार नमित जनु कमल माल सी॥
हिय भरि बिरह-हुताश, उसासन सँग आवत झर।
चले मधुक मुरझाइ, मद भरे अधर-बिंब-वर॥

इसके पश्चात् गोपियाँ श्रीकृष्ण से तर्क पूर्ण अनुनय विनय करती हैं और अन्त में यमुना-तट पर रास क्रीडा आरम्भ होती है —

उज्जल मृदु बालुका पुलिन अति सरस सुहाई।
जमुना जू निज कर-तरंग करि आपु बनाई॥
बैठे तहँ सुन्दर सुजान, सब सुख-निधान हरि।
विलसत विविध विलास हास-रस हिय-हुलास भरि॥

साधारण लौकिक दृष्टि से गोपियों का इस प्रकार का आचरण नितान्त गर्हित प्रतीत होता है। वे कुल वधुएँ हैं। अतएव रात भर कृष्ण के साथ उनका विहार करना उन्हें अश्लीलता तथा निर्लज्जता की चरम सीमा तक पहुँचा देता है।

परमातम परब्रह्म, सबन के अन्तरजामी।
नारायन-भगवान धरम करि सब के स्वामी॥

इस प्रकार कृष्ण को परमात्मा तथा गोपियों को अनेक आत्माएँ मान लेने से नन्ददास की कविता का पारलौकिक पक्ष दृष्टि के सम्मुख आ जाता है। सूक्ष्म दृष्टि से गोपियों का विरह लौकिक विरह नहीं है; किन्तु यह परमात्मा से आत्मा का वियोग है और कृष्ण से उनका मिलन आत्मा परमात्मा का सम्मिलन है। जिस प्रकार नदी समुद्र से मिलकर अपना अस्तित्व खो देती है, उसी प्रकार गोपियां भी कृष्ण से मिलकर अपनी स्वतंत्र सत्ता नष्ट करतीं —

आइ उमँग सों मिली रँगीली गोप-बधू यों।
नन्द सुवन नागर सागर सों प्रेम नदी ज्यों॥

आत्मा परमात्मा के चिरन्तन विरह का चित्र कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी एक स्थान पर खींचा है। वे कहते हैं —

"हरि अहरह तोमार विरह"

राधा के कृष्णरूप में परिणत हो जाने की चर्चा मैथिल-कोकिल विद्यापति ने भी की है—

"अनुखन माधव माधव सुमिरत राधा भेलि मधाई"।

ब्रह्मपुराण में लिखा है कि सृष्टि की इच्छा से उस (परमात्मा) ने अपने को दो भागों में विभक्त किया। उसका एक भाग पुरुष और दूसरा स्त्रीरूप में आविर्भूत हुआ —

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यान्तु सोऽसृजत् विविधा प्रजा॥

—ब्रह्म० १-२०

इस प्रकार पुरुषरूप में परमात्मा तथा स्त्रीरूप में आत्मा की कल्पना भारतीय दार्शनिकों के दीर्घकाल के चिंतन का फल है, किन्तु,

एक सौन्दर्यमय बालरूप में परमात्मा की प्रतिष्ठा आचार्य वल्लभ ने ही की। कृष्ण के इसी रूप को लेकर सूरदास, नन्ददास तथा अष्टछाप के अन्य कवियों ने अपने अमर काव्य की रचना की। यद्यपि कृष्ण की बाल, यौवन तथा विरह-लीला के वर्णन में इन कवियों ने शृंगार रस की ही प्रधानता रखी, किन्तु भक्ति से ओतप्रोत होने के कारण सर्वत्र इनकी कविता में दिव्य शृंगार की झाँकी है। आगे के कवियों की कविता में दिव्य शृंगार का यह स्रोत प्राय लुप्त सा गया। इसका एक मुख्य कारण था भक्ति का अभाव। कृष्ण के रास विलास को साधारण शृङ्गारिकता की कोटि में रखकर लोग उसके आध्यात्मिक रहस्य को भूल न जायँ, इसके लिए ये कविगण बीच बीच में उनके अलौकिक 'ब्रह्मरूप' की ओर भी इङ्गित करते रहते हैं। कविवर नन्ददास जी तो इस पर विशेष ध्यान रखते हैं। 'किशोर कृष्ण' को गोपियों के साथ रास में मग्न देखकर ब्रह्मा आदि देवताओं को पराजित करनेवाला कामदेव आता है, किन्तु कृष्ण उलटे उसी के मन का मथन करके उसका पराभव करते हैं —

तब आयौ वह "काम" पचसर कर हैं जाकें।
ब्रह्मादिक कौं जीति, बढि रह्यौ अति मद ताकें॥
निरखि ब्रज-बधू सग, रग भीने किसोर तन।
हरि मनमथ पर मथ्यौ, उलटि वा मनमथ कौ मन॥
मुरछि परयौ तहँ मैन, कहूँ धनु, कहूँ विसिख वर।
रति देखति पति-दसा भीति है मारति उर-कर॥
पुनि-पुनि पिय अवलोकति, रोवति, अति अनुरागी।
मदन-बदन अमृत चुवाइ, भुज भरि लै भागी॥

(रास-पचाध्यायी)

यहाँ तक नन्ददास जी की रास-पचाध्यायी पर कुछ विचार प्रकट किये गये, अब उनके "भँवरगीत" के विषय में कुछ विवेचन किया

जायगा। वास्तव में भ्रमरगीत में कवि ने गोपियों के विरह का बहुत ही करुणापूर्ण वर्णन किया है। कथा इस प्रकार है —

भ्रमर-गीत की कथा

कृष्ण गोपियों को छोड़कर मथुरा चले जाते हैं। इधर उनके वियोग में गोपियों की बड़ी दयनीय दशा हो जाती है। उन्हें सान्त्वना देने के लिए कृष्ण अपने अनन्य मित्र उद्धव को भेजते हैं। उद्धव अद्वैतवादी हैं। अतएव वे तर्क द्वारा गोपियों के सम्मुख निर्गुण ब्रह्म की स्थापना करते हैं। परन्तु कृष्ण के वियोगानल से संतप्त गोपियों को उद्धव के उस शुष्क ब्रह्मवाद से शान्ति कैसे हो? बस, निर्गुणवाद और सगुणवाद में 'शास्त्रार्थ' प्रारम्भ हो जाता है। इस नोक झोंक के समय कहीं से एक भ्रमर उड़ता हुआ आ पहुँचता है। गोपियों के लिये यह एक अच्छा अवसर मिल जाता है। वे निर्गुणवाद के सम्बन्ध में जितनी जली कटी बातें कह सकती हैं, उस भ्रमर को लक्ष्य करके कहती हैं। संक्षेप में भ्रमरगीत की यही कथा है। इसका मुख्य उद्देश्य निर्गुणवाद का खण्डन और सगुणवाद का प्रतिपादन है।

भ्रमर गीत की परम्परा

भ्रमरगीत की चर्चा सर्वप्रथम श्रीमद्भागवत के दशम-स्कन्ध (पूर्वार्द्ध अध्याय ४६, ४७) में आती है। इसी कथा के आधार पर भक्तप्रवर सूरदास जी ने हिन्दी में सब से पहले भ्रमरगीत की रचना की थी। सूरदास के पश्चात् तो हिन्दी में भ्रमरगीत लिखने की परिपाटी सी चल पड़ी और नन्ददास, हितवृन्दावनदास, प्रागन कवि, रीवानरेश रघुराजसिंह, कविरत्न सत्यनारायण आदि अनेक कवियों ने भ्रमरगीतों की रचना की। इस विषय की सब से अंतिम रचना स्वर्गीय जगन्नाथदास 'रत्नाकर' लिखित 'उद्धवशतक' है। यद्यपि रत्नाकर जी ने अपने इस काव्य ग्रन्थ का नाम भ्रमरगीत नहीं रक्खा, तथापि इस काव्य का विषय वही है। अतएव इसकी गणना भी भ्रमरगीत के अन्तर्गत की जा सकती है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि 'भ्रमरगीत' का उद्गम स्थल श्रीमद्भागवत है। अब संक्षेप में इस बात पर विचार किया जाता है कि श्रीमद्भागवत के भ्रमरगीत और नन्ददास जी के भ्रमरगीत में क्या अन्तर है। श्रीमद्भागवत में यह कथा इस प्रकार है—कृष्ण जी के मित्र उद्धव एक दिन उनसे मिलते हैं। इधर-उधर की बातचीत होने के बाद भगवान् कृष्ण उद्धव के द्वारा नन्द-यशोदा तथा गोपियों के लिए सन्देश भेजते हैं। सुन्दर रथ पर आरूढ़ होकर उद्धव ब्रज में जाते हैं और वहाँ सर्वप्रथम नन्द से मिलते हैं। नन्द जी स्वागत के पश्चात् उनसे कृष्ण का कुशल-क्षेम पूछते हैं। कृष्ण के गुणों का स्मरण करके यशोदा एवं नन्द प्रेम विह्वल हो उठते हैं। फिर उद्धव का उपदेश प्रारम्भ होता है। वे नन्द यशोदा से कहते हैं कि कृष्ण के लिए कोई उत्तम, अधम अथवा सम विषम नहीं है। उनके न तो माता पिता हैं और न पुत्रादि। सत, रज और तम गुणों में भी उनका कोई सम्बंध नहीं है। वे सम्पूर्ण भूतों में वर्तमान हैं। अतएव उनके लिए दुःख प्रकट करना ठीक नहीं —

श्रीमद्भागवत के भ्रमरगीत और नन्ददास के भ्रमरगीत की तुलना

मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णमन्तिके।
अन्तर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥ ३६ ॥

न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियो वास्त्यमानिनः।
नोत्तमो नाधमो नापि समानस्यासमोऽपि वा ॥ ३७ ॥

न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः।
नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥ ३८ ॥

न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु।
क्रीडार्थं सोऽपि साधूनां परित्राणाय कल्पते ॥ ३९ ॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ४६

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के छियालीसवें अध्याय में केवल नन्द तथा उद्धव में ही बातचीत होती है। इसके पश्चात् सैंतालीसवें अध्याय में गोपियों तथा उद्धव का संवाद प्रारम्भ होता है। कमल-नयन, प्रलम्बबाहु कृष्णसखा उद्धव के पीताम्बर तथा कुण्डलादि को देखकर गोपियाँ उत्सुकता-पूर्वक उनके निकट आती हैं तथा कृष्ण के समाचार जानने की आतुरता प्रकट करती हैं —

तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः प्रलम्बबाहुं नवकञ्जलोचनम् ।
पीताम्बरं पुष्करमालिनं लसन्मुखारविन्दं मणिमृष्टकुण्डलम् ॥ १ ॥
शुचिस्मिताः कोऽयमपीव्यदर्शनः कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः ।
इति स्म सर्वाः परिवव्रुरुत्सुकास्तमुत्तमश्लोकपदाम्बुजाश्रयम् ॥ २ ॥
तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः ।
रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने विज्ञाय सन्देशहरं रमापतेः ॥ ३ ॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ४७

फिर गोपियाँ कृष्ण के गुणों का स्मरण कर के विलाप करती हैं। इसी क्षण एक भ्रमर कहीं से उड़ता हुआ आ पहुँचता है। बस, उस भ्रमर में ही कृष्ण और सन्देशवाहक उद्धव के अभिन्न स्वरूप की कल्पना करके गोपियाँ प्रेमविह्वल हो उपालम्भ भाषण करने लगती हैं —

गायन्त्यः प्रियकर्माणि रुदन्त्यश्च गतह्रियः ।
तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययोः ॥ १० ॥
काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसङ्गमम् ।
प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ४७

इसके पश्चात् उद्धव गोपियों से कृष्ण का सन्देश कह कर उन्हें शान्त करते हैं और अन्त में व्रजभूमि, नन्द तथा व्रजवधुओं की वन्दना करते हुए लौट जाते हैं —

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ६३ ॥
—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ४७

उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट रूप से पाठकों के ध्यान में आ जायगी कि भागवतकार ने गोपियों के साथ साथ नन्दयशोदा के कृष्णविरह को भी काफी महत्व दिया है। यही कारण है कि भागवत के एक सम्पूर्ण अध्याय में केवल नन्द-यशोदा के विरह का ही चित्रण हुआ है। किन्तु नन्ददास के लिए नन्द-यशोदा का विरह-वर्णन मानो अनावश्यक था, और इसी लिए उन्होंने केवल गोपियों के विरह चित्रण तक ही अपने को सीमित रक्खा है।

एक बात और है। श्रीमद्भागवत में भ्रमर का प्रवेश सैंतालीसवें अध्याय में उस समय होता है जब गोपी उद्धव संवाद प्रारम्भ होता है। इसी प्रकार नन्ददास ने भी भ्रमर को ही आधार मानकर गोपी उद्धव-संवाद प्रारम्भ कराया है। इससे ज्ञात होता है कि नन्ददास का भ्रमरगीत श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध) के केवल सैंतालीसवें अध्याय पर ही अवलम्बित है।

श्रीमद्भागवत के भ्रमरगीत तथा नन्ददास के भ्रमरगीत की तुलना करते हुए एक बात और भी मालूम होती है। वह यह कि भागवत में उद्धव के उपदेश से गोपियाँ एक प्रकार से सन्तुष्ट हो जाती हैं, किन्तु नन्ददास की गोपियाँ सन्तुष्ट नहीं होती हैं। वे तर्क करती हैं और अन्त में उद्धव को निरुत्तर करके यह पूर्णतया सिद्ध कर देती हैं कि ज्ञान मार्ग से भक्ति-मार्ग ही श्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त भागवत में यह गीत उतने विस्तार में भी नहीं मिलता जितना नन्ददास की रचना में। उद्धव के मथुरा जाने का प्रसंग श्रीमद्भागवत में बहुत ही संक्षिप्त रूप में, केवल एक ही छंद में, वर्णित है। परन्तु नन्ददास जी ने इसका बहुत ही विस्तृत वर्णन अत्यन्त सुन्दर रूप में किया है।

नन्ददास तथा सूरदास के भ्रमरगीतों की तुलना

पहिली बात जो इस प्रसंग में ध्यान देने योग्य है वह यह है कि सूरदास ने श्रीमद्भागवत की कथा को अत्यन्त विस्तृत कर दिया है। उन्होंने तीन भ्रमरगीत लिखे हैं जिनमें से पहिले में कृष्ण के गोकुल में भेजे हुए सन्देश का, दूसरे में कुब्जा के संदेश का तथा तीसरे में गोकुल पहुँचने पर उद्धव और गोपियों के संवाद का वर्णन है। किन्तु नन्ददास के भ्रमरगीत में केवल गोपी उद्धव के संवाद का वर्णन है। सूरदास ने गोपियों के मन की अवस्थाओं का बहुत ही सूक्ष्म निरूपण किया है। इसके विपरीत नन्ददास की रचना में ज्ञान तथा भक्ति का विवेचन मुख्य हो जाता है और मनोवेगों का गौण।

नन्ददास के भ्रमरगीत में उद्धव स्वयं दार्शनिक सिद्धान्तों का उपदेश देते हैं, लेकिन सूरसागर के भ्रमरगीत में आप कृष्ण के संदेशरूप में ही उन्हें प्रकट करते हैं। इसके अतिरिक्त सूरसागर में भ्रमर उद्धव के आगमन के पूर्व ही आ जाता है, किन्तु नन्ददास का भ्रमर श्रीमद्भागवत की भाँति बाद में आता है। इसके अतिरिक्त सूरदास की गोपियाँ केवल हृदय के कोमल भाग का मधुर स्पर्श करके ही ज्ञान पर भक्ति की श्रेष्ठता संस्थापित करती हैं, किन्तु नन्ददास के भ्रमरगीत की गोपियाँ बोधवृत्ति को जाग्रत करके तर्क वितर्क भी करती हैं। उदाहरणार्थ, उद्धव जब यह कहते हैं कि कृष्ण निर्गुण तथा निर्विकार हैं, वे हाथ, पैर, मुख, चक्षु, नासिका, वाणी इत्यादि इन्द्रियों से रहित हैं, इस स्थूल जगत् तथा माया से अलग होकर केवल ज्ञान की सहायता से ही उनकी उपलब्धि हो सकती है तब नन्ददास की गोपियाँ अत्यन्त तर्क के साथ, अकाट्य युक्तियों द्वारा, उनका खण्डन करती हैं। वे कहती हैं —

जो मुख नाहिन हतो कहो किन माखन खायो ?
पायन बिन गोसङ्ग कहो बन बन को धायो ?

आँखिन में श्रजन दयो गोवर्धन लयो हाथ।
नन्द जसोदा पूत है कुँवर कान्ह ब्रजनाथ॥
सखा सुनु स्याम के।

भला इतने प्रत्यक्ष प्रमाणों के रहते हुए ब्रह्म के निर्गुण रूप को कैसे स्वीकार किया जाय !

नन्ददास जी का भ्रमरगीत भागवत के आधार पर रचा गया है सही, परन्तु इसके कथा प्रसंग और क्रम में एक खास मौलिकता मौजूद है। यहाँ पर कुछ ऐसे उद्धरण दिये जाते हैं, जिनसे नन्ददास जी के भ्रमरगीत का कथा-क्रम स्पष्ट रूप से पाठकों के ध्यान में आ जायगा। आरम्भ में उद्धव गोपियों के शील तथा प्रेम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं —

नन्ददास कृत भँवरगीत का क्रम

कहन स्याम सन्देस एक मैं तुम पै आयो।
कहन-समय सकेत कहूँ अवसर नहिं पायो॥
सोचत ही मन मैं रह्यो कब पाऊँ इक ठाउँ।
कहि सँदेस नँदलाल को बहुरि मधुपुरी जाउँ॥
सुनौ ब्रज नागरी।

कृष्ण का नाम सुनते ही गोपियाँ प्रेम विह्वल हो उठती हैं। उनका रोम रोम पुलकायमान हो जाता है तथा उनके नेत्र अश्रुपूर्ण हो उठते हैं। वे उद्धव को कृष्ण-पापद् तथा सुहृद जानकर पाद्याप देती हैं और उनसे कृष्ण का कुशल-क्षेम पूछती हैं। उद्धव कृष्ण तथा अन्य यदुवंशियों के कुशलादि की चर्चा करते हुए इस बात को भी प्रकट करते हैं कि कृष्ण थोड़े ही दिनों में यहाँ आवेंगे, अतएव अधीर होने की आवश्यकता नहीं। इस सन्देश को सुनते ही गोपियाँ मूर्छित हो जाती हैं —

सुनि मोहन सदेस रूप सुमिरन ह्वै आयो,
पुलकित आनन-कमल अग आवेस जनायो।

विह्वल ह्वै धरनी परी व्रजवनिता मुरझाय,
दै जल छींट प्रबोधहीं ऊधो बैन सुनाय।
सुनो व्रजनागरी।

इसके पश्चात् उद्धव की ज्ञान गाथा प्रारम्भ होती है। आप गोपियों से कहते हैं—ब्रह्म की सत्ता तो जल, स्थल, आकाश आदि में सर्वत्र समान रूप से व्याप्त है। जिन्हें तुम 'कान्ह' (कृष्ण) कहती हो वे तो निर्विकार तथा निर्लिप्त हैं। उनके माता पिता भी नहीं हैं। यह समस्त ब्रह्माण्ड एक दिन उन्हीं में विलीन हो जायगा। वे तो केवल लीला रूप में ही अवतीर्ण हुए हैं और केवल योग से ही प्राप्त किये जा सकते हैं। गोपियाँ इसका उत्तर कितने स्वाभाविक ढंग से देती हैं। देखिये,—

ताहि बतावहु जोग जोग ऊधो जेहि भावै,
प्रेम सहित हम पास नन्द नन्दन गुन गावै।
नैन बैन मन प्रान में मोहन गुन भरपूरि,
प्रेम पियूषै छाँड़ि कै कौन समेटै धूरि।
सखा सुन स्याम के।

अकाट्य युक्तियाँ तथा प्रत्यक्ष प्रमाणों के रहते हुए भी जब प्रतिपक्षी वितण्डावाद करता ही जाता है तो उस पर क्रोध आ जाता है। इसका प्रत्यक्ष परिणाम यह होता है कि विवाद करने वाले की ओर से स्वाभाविक उपेक्षा हो जाती है और चित्त-वृत्ति दूसरी ओर सञ्चरण करने लगती है। गोपियों की भी ठीक यही दशा होती है। जब अनेक प्रमाणों के रहते हुए भी उद्धव अपने अद्वैत ज्ञान-कथन से तनिक भी विचलित नहीं होते तब अन्त में गोपियाँ क्रोधवश उन्हें नास्तिक कहकर सम्बोधित करती हैं। इस प्रकार उद्धव की ओर उपेक्षावृत्ति धारण करते ही गोपियों का ध्यान स्वाभाविक रीति से कृष्ण की ओर आकर्षित हो जाता है। उनके नेत्रों के सामने कृष्ण का मनमोहक

रूप उपस्थित हो जाता है और वे उसके दर्शन में तन्मय हो जाती हैं। नन्ददास ने इस मनोवैज्ञानिक स्थल को ढूढ निकालने में एक मर्म-ज्ञ कवि एवं कुशल कलाकार का परिचय दिया है। अन्य भ्रमर-गीतकार इस मार्मिक स्थल तक न पहुँच सके। देखिए किस प्रकार गोपियाँ कृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन कर रही हैं —

ऐसे में नँदलाल रूप नैनन के आगे,
आय गये छबि छाय बने पियरे उर बागे।

कृष्ण के सम्मुख आते ही अत्यंत आर्त भाव से गोपियाँ उनसे प्रार्थना प्रारंभ कर देती हैं —

अहो नाथ रमानाथ और जदुनाथ गोसाईं,
नँद-नँदन बिडराति फिरति तुम बिन सब गाईं।
काहे न फेरि कृपाल ह्वै गो-ग्वालन सुख देहु,
दुख निधि-जल हम बूड़हीं कर अवलंबन देहु।
निठुर ह्वै कहँ रहे।

इस प्रार्थना के पश्चात् गोपियों का उपालंभ आरम्भ होता है। वे आपस में कहती हैं कि दूसरों को कष्ट देना कृष्ण के लिये कोई नई बात नहीं है। ये तो कई जन्म के निर्दयी हैं —

इनके निर्दय रूप में नाहिन कछू बिचित्र,
पय पीवत ही पूतना मारी बाल चरित्र।
मित्र ये कौन के।

जग्य करावन जात हे बिस्वामित्र समीप,
मग में मारी ताड़का रघुबंसी कुलदीप।
बाल ही रीति यह।

सीता जू के कहे तें सूपनखा पै कोपि।
छेदि अंग बिरूप के लोगन लज्जा लोपि।
कहा ताकी कथा।

इस प्रकार कृष्ण की निष्ठुरता का वर्णन करती हुई गोपियाँ उनके प्रेम में मग्न हो जाती हैं —

यहि विधि होइ आवेस परम प्रेमहिं अनुरागी।
और रूप पिय चरित तहाँ ते देखन लागी।
रँगीली प्रेम की।

गोपियों के इस विशुद्ध प्रेम का प्रभाव उद्धव पर भी पड़ता है —

/ देखत इनको प्रेम नेम ऊधव को भाज्यो,
तिमिर भाव आवेस बहुत अपने मन लाज्यो।
मन में कह रज पाय कै लै माथे निज धारि,
हौं तो कृतकृत ह्वै रह्यों त्रिभुवन आनँद वारि।
बन्दना जोग ये।

जिस समय ये बात हो रहा था, उसी समय कहीं से उड़ता हुआ एक भ्रमर आ पहुँचा। बस, गोपियों को उद्धव को फटकारने के लिए एक अच्छा मौका मिल गया। वे भ्रमर को ही सम्बोधित करके उद्धव को जली-कटी सुनाने लगीं —

निसि परसो मम पाँवरे, तुम मानत हम चोर,
तुमहीं सों कपटी हुते मोहन नन्दकिसोर।
आपन सम हमको कियो चाहत है मतिमन्द,
कपट के छन्द सों।

कोउ कहे अहो मधुप स्याम जाको तुम चेला,
/ कुबजा तीरथ जाय कियो इन्द्रिन को मेला।
मधुबन सुधि बिसराय कै आये गोकुल माँहि,
इहाँ सबै प्रेमी बसे तुमरो गाहक नाँहि।
पधारो रावरे।

इस प्रकार कृष्ण के गुणों का स्मरण करती हुई गोपियाँ एक बार गद्‌गद हो उठीं —

ता पाछे इकबार ही रोईं सकल ब्रजनारि,
हा करुनामय नाथ हो केसव कृष्ण मुरारि।
फाटि हियरो चल्यो।

गोपियों के प्रेम प्रवाह में उद्धव की ज्ञान गरिमा बह चली। उन्हें अपना अज्ञान खटकने लगा तथा हृदय में भक्ति का स्रोत उमड़ पड़ा —

धन्य धन्य ये लोग भजत हरि को जो ऐसे,
और कोउ पारस प्रेम बिना पावत कोउ कैसे।
मेरे या लघु ज्ञान कौं उर मद रह्यो उपाधि,
अब जान्यो ब्रज प्रेम कौं लहत न आधो आधि।
वृथा स्रम करि थके।

* * *

अब रहि हौं ब्रजभूमि की है पग मारग धूरि,
विचरत पद मो पै परे सब सुख जीवन-मूरि।
मुनिन हूँ दुर्लभै।

गोपियों के प्रेम का उद्धव पर इतना प्रभाव पड़ा कि मथुरा पहुँचते ही उन्होंने भावावेश में कृष्ण से कहा —

करुनामयी रसिकता है तुम्हरी सब झूँठी,
जबही लौं नहिं लखो तबहिं लौं बाँधी मूँठी।
मैं जान्यो ब्रज जाय कै तुम्हरो निर्दय रूप,
जो तुमरे अवलम्ब ही ताको मेलो कूप।
कौन यह धर्म है।

पुनि पुनि कह अहो चलौ जाय वृन्दावन रहिये,
प्रेम पुंज को प्रेम जाय गोपिन सँग लहिये।
और काम सब छाँड़ि कै उन लोगन सुख देहु,
नातर टूट्यो जात है अबहीं नेह सनेह।
करौगे तौ कहा।

उद्धव की बातें सुनकर कृष्ण ने उनका संशय निवारण किया तथा अन्त में उद्धव अपना वास्तविक रूप दिखलाया —

मो में उनमें अन्तरो एकौ छिन भरि नाहिं,
ज्यौं देखौ मो माहिं वै त्यौं मैं उनहीं माहिं ।
तरङ्गनि वारि ज्यौं ।

गोपी रूप दिखाय तबै मोहन बनवारी,
ऊधव भ्रमहिं निवारि डारि सुरत मोह की जारी ।
अपनौ रूप दिखाय कै लीन्हों बहुरि दुराय ।

❁ ❁ ❁

इन्हीं पंक्तियों के साथ नन्ददास अपना गीत भी समाप्त कर देते हैं। उन्होंने अपने भ्रमरगीत में व्यर्थ विस्तार करके प्रबन्ध को बढ़ाने की कोशिश नहीं की है। जितना कुछ लिखा है, बहुत ही सरस, सरल और साभिप्राय है। भागवत के आधार पर लिखा हुआ उनका यह खण्डकाव्य वास्तव में बहुत ही मधुर है।

नन्ददास आचार्य वल्लभ के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे, अतएव उनके दार्शनिक विचारों को समझने के लिए वल्लभाचार्य के सिद्धान्तों को जान लेना परमावश्यक है।

नन्ददास के दार्शनिक विचार

श्रुतियों की प्रामाणिकता पर आचार्य शंकर ने जिस अद्वैतवाद को प्रस्थापित किया उसकी सत्यता की अनुभूति—वैयक्तिक साधना पर ही अवलम्बित होने के कारण—वह केवल ज्ञानियों की वस्तु रह गई। इसके फलस्वरूप शंकर का मत आत्मनिष्ठ ज्ञानियों के ही चिन्तन तथा मनन का विषय रहा। जनसाधारण को तो ऐसे लोकरंजक तथा लोकपालक सगुण ईश्वर की आवश्यकता थी जो उनके दुःखों को निवारण करता। इस अभाव की पूर्ति के लिए विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत तथा शुद्धाद्वैत जैसे वाद प्रचलित हुए। सिद्धान्त पक्ष में श्रीवल्लभाचार्य शुद्धाद्वैतवादी थे। आप ने विष्णुस्वामी के सिद्धान्त

को ही विकसित रूप में जनता के सम्मुख उपस्थित किया। आचार्य शकर के अनुसार ब्रह्म से विभिन्न कोई सत्ता नहीं है, जीव भी ब्रह्म ही है और जगत् भी ब्रह्म ही है। श्रीवल्लभाचार्य जी का सिद्धान्त इससे तनिक भिन्न है। आप के अनुसार सत चित्-आनन्द स्वरूप ब्रह्म स्वेच्छानुसार अपने इन तीनों रूपों को कभी तो प्रकट करता है और कभी इनका तिरोभाव कर लेता है। चेतन्य जगत् इन्हा तीनों के अशत आविर्भाव से सत्तात्मक होता है। ब्रह्म से आत्मा की उत्पत्ति उसी प्रकार हुई है जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि से चिनगारी की। माया भी ब्रह्म की इच्छानुगामिनी शक्ति है। जीव में जब उपर्युक्त तीनों रूपों का आविर्भाव रहता है और मायाकृत तिरोभाव दूर हो जाता है तब वह अपने शुद्ध ब्रह्म रूप में आ जाता है। यह ईश्वर के अनुग्रह से ही हो सकता है जिसको आचार्य ने 'पुष्टि' सज्ञा दी है। इसी कारण श्रीवल्लभाचार्य का मार्ग 'पुष्टि-मार्ग' के नाम से प्रख्यात है।

आचार्य वल्लभ के अनुसार ब्रह्म तथा जीव के निम्नलिखित प्रधान गुण हैं —

ब्रह्म	जीव
(१) ऐश्वर्य्य	दीनत्व
(२) वीर्य	सर्वदु खन्सहन
(३) यशस्	सर्वहीनत्व
(४) श्री	जन्मादिसर्वापद्विषयत्व (जन्मादि समस्त आपत्तियों के विषय)
(५) ज्ञान	देहादिस्वहबुद्धि (देहादि को ही अहम् अर्थात् मैं हू मानना)
(६) वैराग्य	विषयासक्ति

उपासना के क्षेत्र में श्रीवल्लभाचार्य ने श्रीकृष्ण को ही सम्म्य माना। मोक्ष के दो उपायों—ज्ञान तथा भक्ति में से आपने भक्ति को ही श्रेष्ठ बतलाया। ज्ञान द्वारा मोक्ष में आत्मा अक्षर (ब्रह्म) में लीन हो जाती है, किन्तु भक्ति द्वारा मोक्ष में वह कृष्ण में लीन रहती है।

शंकर तथा वल्लभ, दोनों के दार्शनिक तत्वों पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शंकराचार्य 'एकत्ववादी' तथा वल्लभाचार्य 'अनेकत्ववादी' हैं। आचार्य शंकर के अनुसार केवल ब्रह्म ही सत्य है और सब मिथ्या है, किन्तु वल्लभाचार्य के अनुसार व्यक्तिगत आत्माओं की भी सत्ता है। आप के ब्रह्म तथा जीव में इतना ही अन्तर है कि ब्रह्म का अंश होते हुए भी जीव में 'आनन्द' गुण व्यक्त नहीं है।

वल्लभाचार्य संसार को मिथ्या नहीं मानते। आप के अनुसार ईश्वर तथा जगत् दोनों सत्य हैं। जिस प्रकार कुम्भकार मिट्टी से घट की सृष्टि करता है, उस प्रकार से ईश्वर जगत् की सृष्टि नहीं करता। कुम्भकार के उदाहरण में कुम्भकार तथा मिट्टी दो पृथक वस्तुएँ हैं, किन्तु जगत् की सृष्टि के सम्बंध में ईश्वर कारण तथा वस्तु दोनों है। वह अपने ही को जगत् रूप में परिवर्तित कर देता है। जिस प्रकार स्वर्ण तथा स्वर्ण के आभूषण में केवल रूप का भेद है, वस्तु का नहीं, उसी प्रकार ईश्वर तथा जगत् में भी केवल रूप का ही अन्तर है। संक्षेप में वल्लभाचार्य के दार्शनिक विचारों के सम्बंध में इतना जान लेना पर्याप्त होगा। कविवर नन्ददास वल्लभ सम्प्रदायी तथा 'अष्टछाप' के कवियों में प्रमुख थे। अतएव आप के भी दार्शनिक विचार वही थे जो आचार्य वल्लभ के। इस सम्बंध में एक बात और भी जान लेना परमावश्यक है। वास्तव में काव्यरचना के समय दार्शनिक तत्वों की विवेचना करना कवि का उद्देश्य नहीं रहता। वह तो अत्यन्त रमणीक शब्दों में अपने हृद्गत भावों की अभिव्यक्ति करता हुआ अग्रसर होता जाता है। किन्तु उसकी रचना में प्रसङ्गवश कतिपय ऐसे शब्द तथा विचार आ जाते हैं जिनसे उसके दार्शनिक विचारों की भी अभिव्य

जना हो जाती है। 'रास-पंचाध्यायी' तथा 'भँवरगीत' में भी ऐसा ही हुआ है।

नन्ददास जी ने भी अपने सम्प्रदायानुसार श्रीकृष्ण को ब्रह्म के ही रूप में अंकित किया है। रास-पंचाध्यायी में श्रीकृष्ण-स्वरूप का वर्णन करते हुए आप लिखते हैं —

मोहन अद्भुत-रूप कहि न आवै छवि ताकी।
अखिल अंड-व्यापी जु ब्रह्म, आभा कछु जाकी॥
परमातम परब्रह्म, सबन के अन्तरजामी।
नाराइन-भगवान, धरम करि सब के स्वामी॥

—रा० पं० अ० १—४१, ४२

ऊपर यह लिखा जा चुका है कि आचार्य वल्लभ के अनुसार 'माया भी ब्रह्म की इच्छानुगामिनी शक्ति है'। 'रास-पंचाध्यायी' में नन्ददास ने इसे अत्यन्त स्पष्ट रूप में अङ्कित किया है। गोपियों के उत्तर में भगवान् स्वयं कहते हैं—मेरी वशवर्तिनी माया समस्त संसार को अपने वश में किए हुए है, किन्तु तुम लोगों की माया मेरे मन को भी मोहित कर लेती है —

सकल-विस्व अप-बस करि, मो माया सोहति है।
प्रेम-मई तुम्हरी माया, मो मन मोहति है॥

—रा० पं० अ० ४—२६।

'अद्वैतवाद' के अनुसार केवल ब्रह्म ही सत्य है, और सब माया है। ब्रह्म और माया के गुण में भी अन्तर है। इसी बात को अद्वैतवादी उद्धव गोपियों से कहते हैं —

माया के गुन और, और हरि के गुन जानौ।
उन गुन को इन माँहि आनि काहे को मानो?

जाके गुन श्री रूप को जानि न पायो भेद।
तात निर्गुन रूप को वदत उपनिषद वेद॥
सुनो ब्रजनागरी।

—भँ० गी० २१

किन्तु वल्लभ सम्प्रदायानुयायी नन्ददास जी 'अद्वैतवाद' का माया सम्बन्धी यह सिद्धान्त मान्य नहा। अतएव उनकी गोपिया भी अत्यन्त स्वतन्त्र भाव से इसका खंडन करती हैं—

जौ उनके गुन नाहिं और गुन भये कहाँ ते?
बीज बिना तरु जमै मोहिं तुम कहो कहाँ ते?
वा गुन की परछाँह री माया दरपन-बीच।
गुन तें गुन न्यारे भये अमल वारि जल कीच।
सखा सुनु स्याम के।

—भँ० गी० २०

श्रीमद्भागवतकार ने गोपियों के नैसर्गिक प्रेम, कृष्ण की 'लीला', 'रास' तथा 'मुरली' का वर्णन किया है। सूरदास, नन्ददास तथा अष्ट छाप के अन्य वैष्णव कवियों ने भागवत से भी बढ़कर इनका वर्णन किया है। जिस प्रकार गोपी तथा कृष्ण साधारण सांसारिक पुरुष नहीं, किन्तु आत्मा तथा ब्रह्म स्वरूप हैं उसी प्रकार से कृष्ण की 'लीला' 'रास' तथा 'मुरली' भी साधारण वस्तुएँ नहीं, किन्तु इनमें भी विशेषता है। अब आगे इसी विषय पर कुछ विचार प्रकट किये जायँगे।

लीला शब्द का साधारण अर्थ क्रीड़ा, विहार अथवा कौतुक है, किन्तु वल्लभाचार्य ने एक विशिष्ट अर्थ में इसका प्रयोग किया है। आप 'अणु

लीला

भाष्य' में लिखते हैं—न हि लीलायां किंचित्प्रयोजनमस्ति। लीलाया एव प्रयोजनत्वात्। ईश्वरत्वादेव न लीला पर्यनुयोक्तुं शक्या। सा लीला केवल्य मोक्ष। तन्य लीलात्वेऽप्यन्यस्य तल्लीनो मोक्ष इत्यर्थः। लीलैव केवल्येति वा।

अर्थात् लीला का उद्देश्य लीला ही है, जो भगवान् अपने भक्तों के अर्थ अवतार लेकर स्वाभाविक ही करते हैं। कोई और प्रयोजन नहीं। सर्वशक्तिमान होने के कारण ईश्वर को लीला बंधन में नहीं डाल सकती। यह लीला कैवल्य है। यद्यपि ईश्वर लीला में व्यस्त है, तथापि उसके संकीर्तन से अन्य प्राणियों को मोक्ष मिल सकती है। यह लीला स्वयं पूर्ण है।

नन्ददास ने 'रास-पंचाध्यायी' तथा 'भँवरगीत' में 'लीला' का प्रयोग इसी भाव में किया है—देखिये, शुकमुनि और गोपियाँ—यही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण जड़-चेतन पर भगवान् की इस लीला का क्या प्रभाव है—

हरि-लीला-रस-मत्त मुदित नित बिचरति जग मैं।
अद्भुत गति कतहूँ न अटक है निसरति मग मैं॥
—रा० प० अ० १ २

श्री वृन्दावन चिद्घन, कछु छबि बरनि न जाइ।
कृष्ण ललित लीला के काज धरि रह्यौ जड़ताई॥
—रा० प० अ० १-२१

सकल जन्तु अविरुद्ध जहाँ हरि मृग सँग चरहीं।
काम क्रोध मद लोभ-रहित लीला अनुसरहीं॥
—रा० प० अ० १-२४

मोहन लाल रसाल कि, लीला इनहीं सोहै।
केवल तनमैं भई, न जानैं कछु हम को है॥
—रा० प० अ० २ २२

लीला गुन अवतार है धरि आये तन स्याम।
जोग जुगुति सो पाइये परब्रह्म पुर धाम॥
—भँ० गी० ११

ऊपर के पदों का मनन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भगवान् कृष्ण की 'लीला' कोई साधारण कौतुक नहीं। इसी लीला

के रस में मत्त रहने के कारण श्रीशुकदेव जी अगाध गति से सतत परिभ्रमण करते हैं तथा सब-सौन्दर्य-सम्पन्न श्रीवृन्दावन भी जड़ता धारण किए हुए है। सिंह तथा मृग आदि पशु एक दूसरे के विरुद्ध होने पर भी, भगवान् की लीला के प्रभाव में आकर काम, क्रोध, मद, लोभ से रहित होकर एक साथ संचरण करते हैं। भगवान् कृष्ण के वियोग में भी यही 'मन हरन लीला' गोपियों को सच्चिदानन्दस्वरूप का अनुभव कराती है। वे इसमें तन्मय होकर संयोग वियोग का अपना सब सुख-दुख भूल जाती हैं।

रास

शास्त्रों में परब्रह्म परमात्मा का "रसो वै सः" करके निर्वचन किया गया है। हमारे भक्त कवियों ने भी श्रीकृष्ण को षोडशकलापूर्ण परब्रह्म माना है। इसलिए श्रीकृष्ण में भी सब रसों की अभिव्यक्ति करके उसको रासलीला—नृत्यसंगीत—इत्यादि के रूप में प्रकट किया है। श्रीधर स्वामी ने "रसानां समूहो रासः" कहकर उपर्युक्त भाव को ही दर्शाया है। भगवान् कृष्ण व्रज गोपिकाओं का मण्डल बाँधकर यमुना किनारे शरच्चन्द्रिका में संगीत नृत्य करते थे। श्रीवल्लभाचार्य जी ने अपनी सुबोधिनी टीका में "बहु नर्तकीयुक्तो नृत्यविशेषो रासः" कहकर यही अभिप्राय प्रकट किया है। सब गोपिकाएं रस के केन्द्रस्वरूप रसिकशिरोमणि के अन्तर से बरसने वाले प्रेमरस में मत्त होकर इसी "रास" के अपूर्व आनन्द का अनुभव करती हुई तल्लीन हो जाती थीं। वर्तमान समय में रासक्रीड़ा में लोग अश्लीलता का अनुभव करने लगे हैं। परन्तु इससे हम नहीं कह सकते कि सचमुच ही यह क्रीड़ा कामोत्तेजक या अश्लील है। वास्तव में श्लीलता और अश्लीलता का भाव अपने अपने मनोविकारों पर निर्भर है। यदि हम अपने मनोविकारों को शुद्ध करके श्रीकृष्ण को परब्रह्म स्वरूप मानकर, राधा और गोपियों को उनकी अनन्य भक्त मानकर—रासक्रीड़ा को देखें और उसमें भक्ति का ही स्वरूप अवलोकन करके सात्विक रमण करें, तो यह असम्भव नहीं है। साहित्य के

उद्भट आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती रास की जो व्याख्या दे रहे हैं, उसको देख कर तो आजकल के श्लीलता के समर्थक और भी अधिक नाक-भौं सिकोड़ेंगे। वह व्याख्या इस प्रकार है —

नृत्यगीतचुम्बनालिङ्गनादीनां रसानां समूहो रासस्तन्मयी या क्रीड़ा ताम् अनुव्रतैस्तद्दार्नीं परस्परैक्यमत्येन स्वानुकूलैः। अन्योऽन्यमाबद्धा समर्पिता बाहवो यैस्तैस्सह रास ॥

अर्थात् आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती के मत से केवल बहुत सी नर्तकियों के साथ नृत्य विशेष को ही रास नहीं कहना चाहिए, बल्कि इस रास में नृत्यगीत और आलिंगन-चुम्बन तक का समावेश किया गया है। इसमें नर्तक और नर्तकियां दोनों एक दूसरे से अनुव्रत, एकमत और परस्पर अनुकूल होकर और एक दूसरे से बाहुगुम्फित हो परस्पर आनन्द लेते हैं। इतना होने पर भी उस रास में उनको अश्लीलता दिखाई नहीं देती। फिर इस रासमंडल में केवल एक मात्र नटनागर श्रीकृष्ण का ही अन्तर्भाव नहीं है, किन्तु श्रीकृष्ण के अतिरिक्त उनके अन्य सखा भी सम्मिलित रहते हैं। रास का सामूहिक आनन्द अनेक पुरुष नट और अनेक स्त्री नर्तकियां मिलकर प्राप्त करती हैं। जीव गोस्वामी के मत से एकाधिक पुरुषों का रास में सम्मिलित रहना सिद्ध है। आप कहते हैं —

नटैर्गृहीत कण्ठीनामन्योन्यात्तकरश्रियाम्।
नर्तकीनां भवेद्रासो मण्डलीभूय नर्तनम् ॥

इस प्रकार के रास में अनेक नट और अनेक नर्तकियां परस्पर एक दूसरे के गले में हाथ डालकर और हाथों में हाथ डालकर मण्डलाकार नृत्य करती हैं। इस रासक्रीड़ा को यदि पश्चिमी ढंग के डांस Dance की उपमा दी जाय, तो इसमें अश्लीलता का आरोप किया जा सकता है, परन्तु कृष्णभगवान्, जिनको कि भागवतधर्म में षोडशकलापूर्ण साक्षात् परब्रह्म माना गया है, उनकी उपस्थिति में तो इसको भक्तिरस

का एक सुन्दर और सात्विक दृश्य ही कहा जायगा। महाकवि नन्द-दास जी ने भी अपनी रास पचाध्यायी में इसी रास का अद्भुत वर्णन किया है —

जो ब्रजदेवी निरतति मंडल रास महाछवि।
सो रस कैसे बरनि सकै ऐसो है को कवि॥
मोर ग्रीव भुज मेलि केलि कमनीय बढ़ी अति।
लटकि लटकि मुरि निरतति कापै कहि आवति गति॥
धुनि सों निरतनि लटकनि मटकनि मण्डल डोलनि।
कोटि अमृत सम मुसिकनि मंजुल ता थेइ बोलनि॥

रा० प० अ० ५, २६ २८

रासलीला का प्रभाव वर्णन करते हुए नन्ददास जी कहते हैं —

अप अपनी गति भेद, सबै निरतनि लागीं जब।
मोहे गँधरब ता छिन, सुन्दरि गान कियौ तब॥

रा० प० अ० ५—३०

रास लीला में गोपियों का गान सुन कर रागी गन्धर्वों के मोहित हो जाने में कोई आश्चर्य की बात नहीं, किन्तु यहाँ तो विरागी मुनि तक उसे सुन कर मोहित हो जाते हैं। इतना ही नहीं, जड़ 'शिला' तक उसे सुनकर 'सलिल' में और 'सलिल' 'शिला' में परिवर्तित हो जाता है। वायु, शशि, आकाश स्थित समस्त नक्षत्र तथा सूर्य तक उसे सुनने के लिए विरम जाते हैं—

अद्भुत रस रह्यो रास, गीति धुनि सुनि मोहे मुनि।
सिला सलिल ह्वै गई, सलिल ह्वै गयौ सिला पुनि॥
पवन थक्यौ, ससि थक्यौ, थक्यौ उडु मंडल सगरौ।
पाछैं रबि रथ थक्यौ, चल्यौ नहिं आगैं डगरौ॥

रा० प० अ० ५—३४, ३५।

इस रासलीला के अद्भुत रस का वर्णन कौन कर सकता है? अपने सहस्र मुखों से गाकर भी अब तक शेष पार न पा सके। अत्यन्त शान्त भाव से शंकर मन ही मन इसका ध्यान करते हैं तथा 'सनक' 'सनन्दन' 'नारद' एवं शारदा को भी यह लीला अच्छी लगती है। यद्यपि लक्ष्मी भगवान् के कमल चरणों की रात्रिदिन सेवा किया करती हैं, किन्तु उन्हें भी स्वप्न तक में इसका आनन्द नहीं मिला —

यह अद्भुत रस रास कहत कछु कहि नहिं आवै।
सेस सहस मुख गावैं, अजहूँ पार न पावै॥ ६७
सिव मनहीं मन ध्यावैं, काहू नाहिं जनावै।
सनक, सनन्दन, नारद, सारद अति मन भावै॥ ६८॥
यद्यपि हरि-पद-कमल, सु कमला सेवति निस-दिन।
तद्यपि यह रस सपने, कबहूँ नहिं पायौ तिन॥ ६९॥

रा० पं० अ० ५

इससे पाठकों को मालूम हो जायगा कि नन्ददास जी की रासविषयक कल्पना कितनी व्यापक है। श्रीकृष्ण और गोपिकाओं का "रास मंडल" उनके लिए केवल व्रजमंडल की ही 'वस्तु' नहीं है, बल्कि "अखण्ड-मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्"—उनका "रास" स्वयं सच्चिदानन्द का स्वरूप बनकर चराचर को रस आनन्द-पहुँचाने के लिए उमड़ रहा है।

वेद, उपनिषद् और पुराणों तक में शब्दब्रह्म की महिमा का वर्णन किया गया है। पौर्वात्य दर्शन में शब्द को साक्षात् परब्रह्म ही माना गया है। हमारे यहाँ के साधारण गवैये भी "नादब्रह्म" की महिमा जानते हैं। आजकल पौर्वात्य दर्शनशास्त्र से पूर्णतया अनभिज्ञ और पश्चिमी विचारों का अन्ध अनुकरण करने वाले हिन्दी लेखक 'शब्द' की अपेक्षा 'अर्थ' को अधिक महत्व देने जा रहे हैं, परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाय, तो 'शब्द' के बिना 'अर्थ' का बोध ही नहीं हो सकता—'अर्थ' तो शब्द के पीछे पीछे

मुरली

दौड़ने वाली वस्तु है। नन्ददास जी ने इस तत्व को भली भांति समझ लिया था, और इसीलिए उन्होंने 'मुरली' को "नादब्रह्म की जननि" कहकर वर्णन किया है —

सब लीनीं कर-कमल जोग-माया सी मुरली।
अघटित घटना चतुर, बहुरि अधरन रस जुरली॥
जाकी धुनि तें अगम, निगम, प्रगटे बड़ नागर।
नाद ब्रह्म की जननि मोहनी सब-सुख सागर॥

रा० प० अ० १—२५, २६।

परब्रह्म रूप भगवान् कृष्ण 'स्वर' की मोहिनी माया से ही सम्पूर्ण चराचर विश्व को विमोहित कर रहे हैं। मुरली का स्वर श्रीकृष्ण के अधरों का रसपान कर के विश्व में और भी अधिक उन्मत्तता उत्पन्न कर रहा है। विश्व का सारा ज्ञान, आगम, निगम, सब उसी स्वर से उत्पन्न होकर चराचर को सचालित कर रहा है।

प्रज्ञा-चक्षु सूर ने तो मुरली का और भी रमणीय चित्र खींचा है—

सुनहु हरि मुरली मधुर बजाई।
मोहे सुर नर नाग निरंतर ब्रज बनिता सब धाईं॥
जमुना नीर प्रवाह थकित भयो पवन रह्यो उरझाई।
खग मृग मीन अधीन भये सब अपनी गति बिसराई॥
द्रुम बल्ली अनुराग पुलक तनु, ससि रह्यो निसि न घटाई।
सूर स्याम वृन्दावन विहरत चलहु चलहु सुधि पाई॥

श्रीकृष्ण की वंशी बज उठी। उसकी सुन्दर स्वरलहरियां उठ उठ कर दसों दिशाओं में फैलने लगीं। नादब्रह्म के आनन्द में निमग्न होकर सारी सृष्टि डोलने लगी। सुर नर नाग सब मोहित हुए। ग्वाल बाल और गौएं जंगल में जहां जहां जिस दशा में थीं, वैसी ही चल पड़ीं। गोपियां भी घरों में अपना कामकाज जैसा का तैसा छोड़कर उठ दौड़ीं। वायु जो सुगंध और शीतलता के भार से धीरे धीरे चल

रहा था, उस मधुर मनोहर स्वर को सुन कर अटक रहा। वृक्ष और लताएं अनुराग से पुलकित हो उठा। यमुना तीर का प्रवाह थकित सा हो रहा। खग मृग मीन इत्यादि सब अपनी सुधबुध भूल कर मोहित हो गये। आकाश में चन्द्रमा भी नादमुग्ध होकर ठहर गया। वह भी बंशी की तान में उलझ रहा। सब जीवसृष्टि और जड़सृष्टि नादब्रह्म के आनन्द में तन्मय होकर उसी में बिलकुल तल्लीन सी हो गई। मुरली की माया ऐसी ही है। श्रीकृष्ण की मुरली इस प्रकार जब सारी सृष्टि को विमोहित कर रही है, तब ब्रज की गोपियां का चित्त यदि वह इस तरह हरण कर लेवे कि वे उद्धव के बहुत ज्ञानध्यान बतलाने पर भी कृष्ण के प्रेम में ठगी सी बनी रहें, तो इसमें क्या आश्चर्य—

कौन ब्रह्म की जाति ज्ञान कासों कहौ ऊधो ?
हमरे सुन्दर स्याम प्रेम को मारग सूधो ॥
नैन बैन स्रुति नासिका मोहन रूप लखाय।
सुधिबुधि सब मुरली हरी प्रेम-ठगौरी लाय ॥
सखा सुनु स्याम के।

—भँ० गी० ८

मुरली स्वर में गोपिकाओं को श्रीकृष्ण के अधरामृत का प्रेमरस पान करने को भी मिलता है। श्रीकृष्ण के जूठे अधरामृत में वे अपने को लीन करती हैं—वे एक रूप हो जाती हैं। भक्ति की यह पराकाष्ठा है। इसी में पागल होकर कृष्णवियोग में गोपिकाएं अचानक कह उठती हैं —

अजहूँ नाहिन कछु बिगर्‌यो ज्यक पिय आवौ।
मुरली को जूठो अधरामृत आइ पियावौ ॥

रा० प० अ० ३—१६

साराश यह है कि नन्ददास जी ने मुरली के वर्णन में परब्रह्म का स्वरूप दिखलाकर निर्गुणभक्ति की ओर इशारा मात्र किया है। वास्तव में तो सगुण भक्ति की मूर्तिमान प्रतिमा गोपिकाओं के आधार में उन्होंने

मुरली को माना है। कई भक्तों ने तो जिस प्रकार गोपिकाओं को कृष्ण का अधरामृत पान कराया है, उसी प्रकार मुरली के विषय में भी कहा है और इस तरह गोपिकाओं और मुरली में सौतिया डाह भी पैदा करा दिया है। मुरली की महिमा ही विचित्र है।

नन्ददास जी ने अपनी रासपंचाध्यायी तथा भँवर गीत ब्रजभाषा में लिखा है। यह शौरसेनी अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी है। मध्यकाल में ब्रजभाषा ही साहित्य की एक सामान्य भाषा थी,

भाषा

जिसका प्रयोग समस्त हिन्दी कवियों ने किया है। राजपूताने में यह भाषा 'पिङ्गल' नाम से प्रख्यात थी। सोलहवीं शताब्दी के पूर्वीप्रान्त निवासी कवियों ने भी साहित्य में इसका प्रयोग किया है। नन्ददास भी सम्भवतः पूरब के रहने वाले थे, अतएव आप की ब्रजभाषा में अवधी, भोजपुरी इत्यादि प्रान्तीय भाषाओं के शब्द भी कहीं कहीं मिलते हैं—

जैसे 'है' की जगह अवधी का 'आहि' और 'होयगो' की जगह 'होइ' इत्यादि क्रियाओं का प्रयोग पाया जाता है। नन्ददास ने भोजपुरी के 'रावर' सर्वनाम का भी प्रयोग भँवरगीत में किया है। खड़ी बोली के 'आप' की तरह भोजपुरी मध्यम पुरुष, एकवचन में आदर प्रदर्शन के लिए 'रउआ' अथवा 'रउएँ' का प्रयोग होता है। अवधी तथा ब्रजभाषा में इस सर्वनाम का प्रयोग नहीं होता। सम्बन्धकारक में 'रउआ' का रूप 'राउर' हो जाता है और इसी से नन्ददास ने इस रूप को ग्रहण किया है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कवितावली के 'रावर दोष न पायन को' में इस शब्द का प्रयोग किया है।

नन्ददास की रचना में विदेशी शब्दों का प्राय अभाव है। पंचाध्यायी में आपने अरबी के 'लायक़' तथा 'ग़ार' शब्द के परिवर्तित रूप "लाइक़" तथा 'गार' को ग्रहण किया है जो ध्वनि परिवर्तन के नियम के सर्वथा अनुकूल है।

संस्कृत की कोमलकान्त पदावली का जितना सुन्दर प्रयोग नन्ददास ने अपने काव्य में किया है उतना सम्भवत अन्य किसी भाषा कवि ने नहीं किया है। रास-पंचाध्यायी की भाषा पर तो श्रीमद्भागवत की भाषा का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इसका एक मात्र कारण यही कहा जा सकता है कि आपको अपने गुरू से, तथा स्वतन्त्र रूप से, अनेक बार भागवत पुराण को अध्ययन करने का अवसर मिला था। अवश्य आप को इसके बहुत से श्लोक कंठाग्र होंगे। इसी कारण से तत्सम शब्दों का ही आपकी रचना में बाहुल्य है। उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त आपने दो स्थानों पर 'वदति' तथा 'चुवति' क्रियाओं को भी तत्सम रूप में ही रख दिया है। इसी प्रकार के प्रयोगों से कुछ विद्वान् नन्ददासजी की कविता को जयदेव कवि के 'गीतगोविन्द' का अनुयायी तक मानने लगे हैं।

अस्तु। नन्ददासजी की प्रासादिक कविता का माधुर्य और रस इत्यादि को देखकर ही सर्वसाधारण म यह जनश्रुति प्रचलित हो गई है कि—

"और सब गढ़िया, नन्ददास जड़िया।"

अर्थात् अन्य कवियों की रचना मे जो सौष्ठव और स्वारस्य नहीं पाया जाता, वह नन्ददासजी की कविता में मिलता है। छन्द की गति को ठीक रखने के लिए आप के पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कवियों ने शब्दों को खूब तोड़ा मरोड़ा है, जिसका एक परिणाम यह हुआ है कि भाषा में दुरूहता आ गई है। नन्ददास की भाषा मे यह दोष नहीं है। आप के शब्दों के परिवर्तन ध्वनि शास्त्र के नियमों के अनुकूल होने के कारण अत्यन्त स्वाभाविक बन पड़े हैं। जैसे—लछमी (लक्ष्मी), अपछरा (अप्सरा), गन्धरब (गन्धर्व), स्रम (श्रम), अन्तरजामी (अन्तर्यामी), धरम (धर्म), जोबन (यौवन), मारग (मार्ग) आदि।

भाषा को टकसाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें प्रचलित शब्दों, मुहावरों और कहावतों का प्रयोग किया जाय। नन्ददास

जी ने भी 'रास-पंचाध्यायी' तथा 'भँवरगीत' में प्रचलित मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। पंचाध्यायी की अपेक्षा भँवरगीत में मुहावरों का अधिक प्रयोग हुआ है। इसका भी एक कारण है। भँवरगीत वास्तव में एक उपालम्भ-काव्य-ग्रन्थ है और जब पारस्परिक वार्तालाप में उपालम्भ अथवा व्यङ्ग्यात्मक शैली का उपयोग किया जाता है तो मुहावरे स्वाभाविक ढंग से आ जाते हैं। नन्ददासजी ने जिन मुहावरों का प्रयोग अपनी कविता में किया है उनमें से कुछ का प्रयोग प्रान्त विशेष में ही होता है। जैसे 'मनमूसना' (मन चुराना) में पूर्वी अवधी तथा भोजपुरी की स्पष्ट छाप है। आप के शेष मुहावरों का प्रयोग प्रायः सर्वत्र होता है—जैसे धूल समेटना (खाक छानना), इन्द्रिया को मारना (इन्द्रियों को वश में करना), लोभ की नाव होना (अत्यन्त लोभी होना), बेगारी काटना (व्यर्थ समय खोना), पी का पद पाना (मोक्ष पाना) इत्यादि। आपकी लोकोक्तियों का प्रयोग तो प्रायः सार्वदेशिक है। जैसे 'घर आयो नाग न पूजिये बाँबी पूजन जाहि', 'जल बिन कहो कैसे जिय, गहिर नल की मीन' इत्यादि।

भाषा को रसानुकूल बनाने के लिए कवि को तीन गुणों का ध्यान रखना पड़ता है। वे हैं माधुर्य, ओज और प्रसाद। जिस गुण से चित्त द्रवीभूत हो कर आह्लादित हो, उसे माधुर्य कहते हैं। यह गुण संयोग शृङ्गार से करुण में, करुण में वियोग शृङ्गार में और वियोग शृङ्गार से शान्त रस में अधिकाधिक होता जाता है। जिस रचना में श्रुतिमधुर पद विशेष रूप में होते हैं, उसमें माधुर्यगुण विशेष माना जाता है। काव्य में विशेष कर टवर्ग श्रुति कटु माना गया है। अतएव वह माधुर्यगुण का विघातक है। नीचे नन्ददास जी की कविता का माधुर्यगुण-युक्त एक उदाहरण दिया जाता है—

काव्यगुण

नूपुर, कंकन, किंकिनि, करतल मंजुल-मुरली।
ताल, मृदंग, उपंग, चंग, एकहि सुर जुरली॥ ११॥

मृदुल मुरज टकार, ताल झंकार मिली धुनि।
मधुर जंत्र के तार भँवर गुंजार रली पुनि॥ १२॥
रा० प० अ० ८

जो गुण चित्त का उद्दीपन कर के उसको विशाल बनाता है, उसे ओज कहते हैं। वीर, वीभत्स और रौद्र रस में क्रमशः इसकी अधिकाधिक स्थिति रहती है। द्वित्ववर्ण, संयुक्तवर्ण, अर्द्ध रकार, टवर्ग एवं लम्बे लम्बे समास युक्त पद, ओजगुण की व्यञ्जना करते हैं। शृङ्गार रस की प्रधानता होने के कारण नन्ददास की कविता में इस गुण का प्रायः अभाव है। फिर भी नीचे एक उदाहरण दिया जाता है —

✓ पवन थक्यौ, ससि थक्यौ, थक्यौ उडुमंडल सगरौ।
पाछें रवि रथ थक्यौ, चल्यौ नहिं आगैं डगरौ॥ ४५॥
रा० प० अ० १

प्रसादगुण की स्थिति सभी रसों और सारी रचनाओं में हो सकती है। वस्तुतः माधुर्य और ओजगुण का संबंध प्रायः शब्द के वाह्यरूप से होता है, किन्तु प्रसाद का सम्बन्ध उसके अर्थ से है। अतएव काव्य की जिस भाषाशैली से उसका अर्थ सहज हृदयङ्गम हो जाय, ऐसा सरल और सुबोध पद प्रसादगुण-युक्त होता है। नन्ददास की रचना में यह गुण विशेष रूप से विद्यमान है। उदाहरणार्थ कुछ पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं —

है गई विरह बिकल सब पूँछति द्रुम बेली बन।
को जड़, को चेतन न जानत कछु विरही जन॥ २॥
हे मालति! हे जाति जूथके! सुनि हित दै चित।
मान हरन मन हरन लाल गिरधरन लखे इत॥ ६॥
अहो असोक! हर सोक, लोकमनि! पियहि बतावहु।
अहो पनस! सुभ-सुमन मरति तिय अमिय पियावहु॥ १६॥
जमुना तट के विटप पूँछि भई निपट उदासी।
क्यों कहिहैं सखि! महा कठिन तीरथ के बासी॥ १७॥
रा० प० अ० २

रास-पंचाध्यायी तथा भँवरगीत के काव्य-गुणों का विवेचन ऊपर किया जा चुका है, अब यहाँ पर रसों का विवेचन किया जाता है।

रस

वास्तव में काव्य के उपर्युक्त तीनों गुण रस के धर्म हैं। काव्य में रस ही मुख्य एवं सर्वोपरि वस्तु है। यही कारण है कि आचार्यों ने इसे काव्य की आत्मा कहा है। रस नव हैं—शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त। कुछ साहित्याचार्यों ने इन नव रसों के अतिरिक्त वात्सल्य और भक्ति आदि कुछ और भी रस माने हैं। किन्तु आचार्य मम्मट के अनुसार रसों की संख्या नव ही है और वात्सल्य और भक्ति को क्रमशः पुत्रादि विषयक रति भाव में और भक्तिरस को देव विषयक रति भाव के अन्तर्गत मानना चाहिए। अत्यन्त व्यापक होने के कारण आचार्यों ने शृङ्गार को 'रसराज' माना है। नन्ददास की रचना में प्रधान रूप से शृङ्गार तथा गौण रूप से करुण रस की अभिव्यञ्जना हुई है। शृङ्गाररस का भी संयोग शृङ्गार तथा विप्रलम्भ शृङ्गार, इन दो भागों में विभक्त किया जाता है। संयोग शृङ्गार भी कहीं नायिकारब्ध तथा कहीं नायकारब्ध होता है। जहाँ नायिका के द्वारा उपक्रम होता है वहाँ नायिकारब्ध तथा जहाँ नायक के द्वारा उपक्रम होता है वहाँ नायकारब्ध संयोग शृङ्गार होता है। नायकारब्ध संयोग-शृङ्गार का एक बहुत ही उत्तम उदाहरण नीचे दिया जाता है —

उज्वल मृदु बालुका पुलिन अति सरस सुहाई।
जमुना जू निज कर तरंग करि आपु बनाई॥ १०२॥
बैठे तहँ सुन्दर सुजान सब सुख निधान हरि।
विलसत विविध विलास हास रस हिय हुलास भरि॥१०३॥
परिरंभन मुख चुम्बन कच कुच नीवी परसत।
सरसत प्रेम अनंग रंग नव घन ज्यों बरसत॥१०४॥
रा० पं० अ० १

ऊपर के पद में रस के सारे अंग स्पष्ट परिलक्षित हैं। इसका स्थायीभाव रति है। कृष्ण तथा गोपिकायें आलम्बन विभाव, उज्वल यमुनातट उद्दीपन, परिरंभण, चुम्बन आदि अनुभाव तथा सम्मिलन सुख से उत्पन्न हर्ष व्यभिचारी भाव है। यहाँ उपक्रम श्रीकृष्ण ने किया है अतः यह नायकारब्ध संयोग शृङ्गार हुआ।

विप्रलम्भ शृङ्गार को आचार्यों ने अभिलाषा हेतुक, ईर्ष्या हेतुक, विरह हेतुक, प्रवास हेतुक तथा शाप हेतुक, इन पाँच भागों में विभक्त किया है। नीचे प्रवास हेतुक विप्रलम्भ शृङ्गार का एक बहुत ही उत्तम उदाहरण दिया जाता है। इसमें कृष्ण के अन्तर्धान हो जाने पर गोपियों की प्रलाप-दशा की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यञ्जना हुई है —

हे चन्दन! दुख दन्दन! सब की जरनि जुड़ावौ।
नँदनन्दन, जगवन्दन, चन्दन हमहिं बतावौ॥ १० ॥
पूछौ री इन लतन, फूलि रहीं फूलन जोई।
सुन्दर पिय के परसि बिना, अस फूल न होई॥ ११ ॥
अहो पवन! सुभ गमन सुगँध सँग थिर ह्वै रही चलि।
दुख दवन, सुख भवन रवन कहुँ तैं चितए अलि॥ १२ ॥
अहो चंपक बर कुसुम! तुमहिं छबि सब सौं न्यारी।
नेकु बतावहु अहो! जहाँ हरि कुंज बिहारी॥ १४ ॥

रा० प० अ० ३

निम्नलिखित पदों में कवि ने करुणरस का अत्यन्त सजीव चित्र उपस्थित किया है —

प्रनत मनोरथ करन, चरन सरसीरुह पिय के।
का घटि जैहे नाथ! हरत दुख हमरे जिय के॥ ८ ॥
कहाँ हमारी प्रीति कहाँ पिय! तुव निठुराई।
मनि पखान सौं खचै, दई तैं कछु न बसाई॥ ९ ॥
जब तुम कानन जात सहस जुग सम बीतत छिनु।
दिन बीतत जिहि भाँति हमहिं जानत पिय तुम बिनु॥ १० ॥

पुनि आनन तें आवत सुन्दर आनन देखैं।
तहँ बिधना अति क्रूर करी पिय! नैन निमेखैं ॥ ११ ॥

रा० पं० अ० ३

रासपंचाध्यायी को समाप्त करते समय नन्ददास जी ने शान्त-रस का सुन्दर चित्र खींचा है —

स्रवन कीरतन ध्यान सार सुमिरन को है पुनि।
ग्यान सार हरि ध्यान सार स्रुति सार गुही गुनि ॥
अघ हरनी मन हरनी, सुन्दर प्रेम बितरनी।
"नन्ददास" के कंठ बसौ, नित मंगल करनी ॥

"रासपंचाध्यायी" में तो श्रीकृष्ण और गोपिकाओं के राग का ही प्रत्यक्ष रूप से वर्णन है परन्तु नन्ददास जी ने "रास" शब्द की व्युत्पत्ति पर ध्यान रखते हुए प्रायः काव्य के सभी रसों का आविर्भाव भी ठौर ठौर पर दिखलाया है। इस 'भँवरगीत' में नन्ददास ने हास्य-रस को भी चतुरता से चित्रित किया है। प्राचीन काल से ही मूरख तथा उनकी मूर्खतापूर्ण बातें हास्य रस का आलम्बन रही हैं। ब्रज में जाकर उद्धव ब्रजयुवतियों को अद्वैतवाद की शिक्षा देना आरम्भ करते हैं। उनका इस प्रकार का आचरण अनन्य भी गोपियों की दृष्टि में मूर्खतापूर्ण है। आगे गोपियाँ भी व्यङ्ग्यगर्भित बातों में उन्हें मूर्ख बनाती हैं। काव्य में व्यंग हास्यरस का पोषक भी माना गया है। नीचे उदाहरण स्वरूप कतिपय पद उद्धृत किए जाते हैं —

✓ कोउ कहै "अहो मधुप! स्याम जाको तुम चेला।
कुबजा तीरथ जाय कियो इन्द्रिन को मेला ॥
मधुबन सुधि बिसराय कै आये गोकुल माहिं।
इहाँ सबै प्रेमी बसैं तुमरो गाहक नाहिं ॥
पधारो रावरे ॥ ४७ ॥

कोउ कहै "रे मधुप! साधु मधुबन के ऐसे।
और तहाँ के सिद्ध लोग ह्वै हैं धौं कैसे?

अवगुन गुन गहि लेत हैं गुन को डारत मेटि।
मोहन निर्गुन को गहे तुम साधुन की भेंटि।
गाँठि की खोय के॥ ४८॥

उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को मालूम हो जायगा कि कविवर नन्ददास की रचना कैसी सरस है और भिन्न भिन्न रसों का आविर्भाव आपने अपनी कविता में किस प्रकार किया है।

वस्तु वर्णन तथा काव्य के उत्कृष्टता प्रदर्शन में गुण और अलंकार दोनों की आवश्यकता पड़ती है। रस तो, जैसा ऊपर कहा गया है, काव्य की आत्मा ही है। अब गुण और अलंकार के अन्तर को भी स्पष्टरूप से जान लेना चाहिए। वास्तव में गुण रस के धर्म हैं, क्योंकि वे सदैव रस के साथ रहते हैं, किन्तु अलंकार रस का साथ छोड़कर नीरस काव्य में भी रहते हैं। इसके अतिरिक्त गुण सदा रस का उपकार करते हैं, किन्तु अलंकार रस के साथ रहकर कभी उपकारक होते हैं और कभी अपकारक।

अलंकार

अलंकार के भी साधारणतया दो भेद हैं—शब्दालंकार और अर्थालंकार। नन्ददास की कविता में दोनों प्रकार के अलंकार मिलते हैं। शब्दालंकार में अनुप्रास मुख्य है। नीचे रास-पंचाध्यायी से अनुप्रास के उदाहरण दिए जाते हैं—

कृपा-रंग-रस ऐन नैन राजत रतनारे।
कृष्ण-रसासव-पान अलस कछु घूम घुँमारे॥ ९॥

स्रवन कृष्ण-रस भरन गंड-मंडल भल दरसै।
प्रेमानंद मिलि तासु मन्द-मुसिकन मधु बरसै॥ ६॥
रा० पं० अ० १

इत महकति मालती चारु चंपक चित चोरत।
उत घनसार तुसार मिली मंदार झकोरत॥ ११८॥

इत लवग नव-रग एलची मेलि रही रस।
उत कुरवक, केवरा, केतकी गध-बध यम ॥ ११६ ॥
रा० प० अ० १

नैन बैन मन प्रान मैं मोहन गुन भरपूरि।
प्रेम पियूषे छाँड़ि कै कौन समेटै धूरि॥
भँ० गी० १२

अर्थालकार म नन्ददास जी ने उपमा, अनन्वय, रूपक तथा उत्प्रेक्षा का विशेष रूप से प्रयोग किया है। इनम भी उत्प्रेक्षा का प्रयोग अत्यधिक परिमाण में हुआ है। अब इन अलकारों के पारस्परिक सम्बन्ध को भी तनिक समझ लेना चाहिए। उपमालकार में उपमेय और उपमान की समता करके उपमेय का उत्कर्ष बढाया जाता है, रूपक मे अभेद आरोप करके। अनन्वय म तो उपमय को ही उपमानता प्राप्त हो जाती है, किन्तु उत्प्रेक्षा म उपमेय को उपमान से भिन्न जानते हुए भी बलपूर्वक प्रधानता के साथ उपमेय म उपमान की सम्भावना की जाती है। अब क्रमश इन के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं —

(१) उपमा—

सुघर साँवरे पिय सँग, निरतति यौं ब्रज बाला।
ज्यों घन मडल मजुल खेलति दामिनी माला ॥ १४ ॥
रा० प० अ० ४

(२) रूपक—

नव मरकत मनि स्याम, कनक मनि गन ब्रजबाला ॥ १० ॥
रा० प० अ० ४

(३) अनन्वय—

या बन की बर बानक, या बनहीं बन आवै ॥ २६ ॥
रा० प० अ० १

(४) उल्लेखा—

गोरे तन की जोति छूटि छवि छाइ रही घर।
मानो ठाढ़ी सुभग कुँवरि, कंचन अवनी पर॥ ४२॥
घन तें बिछुरि बीजुरी जनु मानिनि-तनु फाछे।
फिरो चंद मों रूसि, चन्द्रिका रहि गई पाछे॥ ४३॥

रा० प० अ० २

रास पंचाध्यायी की रचना नन्ददास जी ने रोला छन्द में की है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में चौबीस मात्राएँ होती हैं और यति ग्यारह और तेरह पर होती है। इस नियम के अनुसार पंचाध्यायी के कतिपय पदों में यतिभंग दोष आ जाता है, किन्तु नन्ददास जी की समस्त कविता पढ़ने से शायद यह परिणाम भी निकाला जा सकता है कि आपने छन्दों के अन्तर्गत यति और मात्राओं इत्यादि की गणना की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है। जैसे कि आज गायक लोग किसी भी प्रकार के छन्द को खींचतान कर अपने संगीत के ताल-स्वर में बैठा लेते हैं वैसा ही नन्ददास जी के छन्दों में भी कई जगह पाया जाता है। अवश्य ही नन्ददास जी केशवदास की तरह छन्दशास्त्र और पिंगलशास्त्र के बहुत बड़े पंडित नहीं जान पड़ते, परन्तु उनकी रचना में छन्दों की गति, शब्दों के लालित्य और पदों की रचना में संगीत तो अवश्य पाया जाता है, और अष्टछाप के प्रायः सभी कवि संगीत के आचार्य माने जाते हैं। नन्ददास जी की समस्त रचना से भी उनकी संगीतप्रियता का पूर्ण परिचय मिलता है।

छन्द

नन्ददास जी ने अपने भँवरगीत की रचना जिस ढंग के छन्द में की है, उससे उनकी संगीतपटुता का बहुत अच्छा प्रमाण मिलता है। भँवरगीत की रचना आप ने एक स्वतंत्र प्रकार के छन्द में की है। इसके प्रत्येक छन्द में प्रथम रोला के दो पद, फिर दोहे के दो पद और अन्त में दस मात्राओं की एक टेक रखी गई है। रोले और दोहे की संयोजना में नन्ददास जी का संगीत वैदग्ध्य प्रकट होता है, क्योंकि

रोला और दोहा, दोनों छन्दों में चौबीस ही चौबीस मात्राएं होती हैं, और दोनों छन्दों की रचना यति के हिसाब से भी एक दूसरे से उलटी पड़ती है। इसलिए रोले की दो लाइनों के बाद ही दोहे की दो लाइनें रख देने से भँवरगीत का छन्द बहुत ही भावोत्पादक और संगीतमय बन गया है। इसके साथ ही दस मात्रावाली अन्तिम टेक के मिलने से गोपियों और उद्धव के उत्तरप्रत्युत्तर की तरंगावली में संगीत की एक अपूर्व हिलोर पैदा हो रही है।

"भँवरगीत" नाम से ही प्रकट होता है कि यह कविता "गीतिकाव्य" है, और नन्ददास जी ने इसको संगीत के ढंग पर ही छन्दों में बैठाया है। इसका सब से बड़ा प्रमाण भँवरगीत के प्रारंभ की दो पंक्तियाँ हैं —

ऊधौ को उपदेस सुनो ब्रजनागरी।
रूप सील लावन्य सबै गुन आगरी॥

भँवरगीत के प्रत्येक 'गीत' की प्रथम दो लाइनें रोला छन्द की हैं। फिर भी नन्ददास जी ने इस गीतिकाव्य की सर्वप्रथम दो लाइनें, चौबीस मात्राओं के रोला में न रखकर, उपर्युक्त प्रकार से, इक्कीस मात्राओं की ही क्यों रखीं? हमारे इस प्रश्न का उत्तर सम्पूर्ण पुस्तक की "सुनो ब्रजनागरी" इस टेर में मौजूद है। अर्थात् इस गीतिकाव्य के प्रारंभ की दो लाइनें मानों सम्पूर्ण भँवरगीत के "अन्तरा" के रूप में रक्खी गई हैं। जैसे कोई भी पद गाते समय उसका अन्तरा बार बार गाया जाता है, वैसे ही भँवरगीत को भी कवि ने गाने की चीज़ बना दिया है। सारांश यह है कि नन्ददास जी ने भँवरगीत की छन्दरचना में अत्यन्त कौशल से काम लिया है, और इससे इस काव्य का माधुर्य बहुत ही बढ़ गया है।

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने अपने अमर काव्य में प्रकृति का अत्यन्त मनोरम चित्र उपस्थित किया है। कालिदास की उपमाएं श्रेष्ठ बतलायी गई हैं, किन्तु उनका प्रकृति चित्रण भी कम सुन्दर नहीं। शकुन्तला में आश्रम का और कुमार-सम्भव के प्रारम्भ में हिमालय का जैसा सुन्दर चित्र खींचा गया है, वैसा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। हिन्दी के प्राचीन कवियों का ध्यान प्रकृति वर्णन की ओर बहुत कम रहा है। इसका कारण यह है कि हिन्दी कविता का प्रारम्भ उस समय हुआ जब हमारे देश में स्वाधीनता का अच्छा सा वायुमण्डल मौजूद नहीं था। कवि लोग विशेष कर राजाओं और बादशाहों के दरबार में आश्रित थे, और उनको प्रकृति निरीक्षण के अवसर भी प्राय कम ही मिलते थे। अधिकांश में अपने आश्रय-दाताओं तथा उनके दरबार के मनोरंजन अथवा कीर्ति-वर्णन के लिए ही कवि लोग रचनाएं करते थे। ऐसी दशा में प्रकृति चित्रण की ओर उनका ध्यान न जाना एक स्वाभाविक बात है। फिर भी कुछ भक्त कवियों ने प्रकृतिवर्णन अच्छा किया है।

नन्ददास का प्रकृति चित्रण

नन्ददास जी की कविता में भी प्रकृति चित्रण दो रूपों में हुआ है—एक तो प्रकृति का बाह्य चित्रण दूसरा उद्दीपन तथा अलंकार रूप में प्रकृति का वर्णन। बाह्य प्रकृति चित्रण को ही हम वास्तविक प्रकृति-वर्णन कह सकते हैं। इस प्रकार के प्रकृति-वर्णन में 'बिम्ब' ग्रहण करना ही कवि का मुख्य उद्देश्य होता है। बिम्ब ग्रहण से तात्पर्य यह है कि कवि जिस दृश्य का चित्रण करे उसकी सजीव प्रतिमा पाठकों के सम्मुख आ जानी चाहिए। कुछ स्थलों पर नन्ददास ने प्रकृति का चित्रण इसी रूप में किया है। उदाहरण रूप में कतिपय पद नीचे दिए जाते हैं —

तिहिं सुर-तरु-मधि और एक अद्भुत छवि छावै।
साखा दल फल फूलन हरि-प्रतिबिम्ब बिरावै॥ २४॥
ता तर कोमल कनक भूमि मनि-मै मोहत मन।
लखियतु सब प्रतिबिम्ब मनहुँ घर में दूजौ बन॥ २५॥

थलज जलज झलमलत, ललित बहु भँवर उडावै।
उड़ि उडि परत पराग, विमल छवि कहति न आवै ॥ ३६ ॥
जमुना जू अति प्रेम भरी तट बहति जु गहरी।
मनि-मंडित महि मांझि, दूरि जो उपजति लहरी ॥ ३७ ॥

रा० प० अ० १

बाह्य प्रकृति चित्रण-सम्बन्धी रास के निम्नलिखित पद भी सुन्दर हैं—

सुभ-सरिता के तीर धीर बलवीर गए तहँ।
कोमल मलै समीर, छविन की महा भीर जहँ ॥ ११६ ॥
कुसुम धूरि धूधरी कुंज, छवि पुंजनि छाई।
गुंजत मंजु मलिंद बेनु जनु बजति सुहाई ॥ ११७ ॥
इत महकति मालती, चारु चंपक चित चोरत।
उत घनसार तुसार मिली मन्दार झकोरत ॥ ११८ ॥
इत लवंग नवरंग एलची झेलि रही रस।
उत कुरबक केवरो, केतकी गंध-बंध-बस ॥ ११९ ॥
इत तुलसी छवि हुलसी छाड़ति परिमल-पूरैं।
उत कमोद आमोद मोद भरि भरि सुख लूटैं ॥ १२० ॥

रा० प० अ० १

नन्ददास जी भक्तिकाल में हुए, अतएव उद्दीपन तथा अलंकार रूप में आपने प्रकृति का जो चित्रण किया उसमें उतनी अस्वाभाविकता नहीं आने पाई जितनी बिहारी, देव तथा रीतिकाल के अन्य कवियों में आई। भगवान् कृष्ण के रास की इच्छा करते ही उद्दीपन रूप में जो चन्द्रोदय हुआ उसका मनोहर चित्र निम्नलिखित पदों में कवि ने खींचा है।

ताही छिन उडराज उदित, रस रास सहायक।
कुंकुम मंडित प्रिया बदन जनु नागर नायक ॥ २१ ॥
कोमल किरन अरुन नभ बन में व्यापि रही यों।
मनसिज खेल्यौ फागु घुमरि घुरि रह्यो गुलाल ज्यों ॥ २२ ॥

फटिक-छटा सी किरन कुज-रन्ध्रन ह्वै आई।
मानौं वितन वितान, सुदेस तनाव तनाई॥ ४३
रा० प० अ० १

अब अलकार रूप मे भी प्रकृति वर्णन का एक उदाहरण नीचे उद्‌धृत किया जाता है —

मुख-अरविन्द आगैं, जल अरविंद लगैं अस।
भोर भएँ भवनन के दीपक मद परत जस॥ ४१॥
रा० प० अ० ४

नन्ददास जी की समस्त कविता देखने से जान पड़ता है कि हिन्दी के अन्य भक्त कवियो की भांति नन्ददास जी ने भी अपने काव्य में प्रकृतिवर्णन को कोइ खास विशेषता नहीं दी है। लेकिन वर्णन के प्रवाह मे आपने प्रकृतिचित्रण का कोई अवसर भी हाथ से जाने नहीं दिया है।

भक्ति

कठोपनिषद् में कहा गया है कि जब मनुष्य के हृदय में रहने वाली सब कामनायें छूट जाती हैं, तब वह मुक्त हो जाता है। उस समय वह इसी ससार मे रहते हुए ब्रह्मानन्द का उपभोग करता है।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदिश्रिता।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्मसमश्नुते॥

अब प्रश्न यह उठता है कि कामनाओं का बन्धन कैसे छूटे? इसके लिए भी दो उपाय बतलाये गए है—ज्ञान और भक्ति। पूर्णज्ञान प्राप्त होने से अविद्या तथा तज्जनित तृष्णादि का नाश हो जाता है। उग्र तपस्या के पश्चात् ज्ञान की प्राप्ति पर भगवान् बुद्ध ने निम्नलिखित उदान (उल्लास-वाक्य) कहा था —

अनेक जाति ससार सन्धाविस्स अनिब्बिसं।
गहकारक गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुन॥

गहकारक दिट्ठोसि, पुन गेहं न काहसि ।
सब्बा ते फासुका भग्गा, गहकूटं विसंखितं ॥
विसंखारं गतं चित्तं, तण्हानं खयमज्झगा ।

धम्मपद ११-८

अर्थात् मैं लगातार अनेक जन्मों तक (इस कायारूपी घर को बनाने वाले) गृहकार को ढूंढता हुआ संसार में दौड़ता रहा। फिर फिर पैदा होना दुःखदायी है। लेकिन हे गृहकार! अब तुझे मैंने देख लिया। अब तू फिर घर न बना सकेगा। तेरी सभी कड़ियाँ टूट गईं। गृह-कूट भी गिर पड़ा। चित्त संस्कार-रहित हो गया। तृष्णा जाती रही।

भगवान् बुद्ध की तरह कठिन तपस्या करने वालों की संख्या इस संसार में अत्यल्प है, अतएव सर्वसाधारण के लिए भक्तिमार्ग भी श्रेयस्कर बतलाया गया है। श्रीमद्भागवतकार के अनुसार सतयुग, त्रेता तथा द्वापर में मोक्ष-साधन के लिए ज्ञान तथा वैराग्य अपेक्षित हैं, किन्तु कलियुग में तो केवल भक्ति द्वारा ही सायुज्य मुक्ति मिल सकती है —

सत्यादि त्रियुगे बोध वैराग्यौ मुक्तिसाधकौ ।
कलौ तु केवला भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी ॥ ४ ॥

श्री० भा० माहात्म्य अ० २

इस प्रकार श्रीमद्भागवत में वासुदेव की भक्ति ही श्रेष्ठ मानी गई है। महर्षि गर्ग ने भी गालव को सम्बोधित करते हुए एक स्थान पर कहा है —।

हे गालव! परमात्मा-स्वरूप कृष्ण ही अशरीरियों की निधि हैं। यह ब्रह्माण्ड उनका एक अंश है। अपनी मौज के लिए खिलवाड़ करने वाले बालक की भाँति ईश्वर अपनी माया से सृष्टि का संघटन और विघटन किया करता है। यह माया वासुदेव की कीला है। इसकी निवृत्ति कृष्ण के उपासनापुञ्ज से होती है।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥
ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्यस्य मत्परा ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ ६ ॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥

भ० गी० अ० १२

अर्थात् अव्यक्त निर्गुण में चित्त लगाने वाले को बड़ी तकलीफ होती है, क्योंकि निर्गुण ब्रह्म बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है। इसलिए मुझपर एकान्तिक प्रेम रखते हुए जो लोग अपने सारे सांसारिक कर्मों को, मेरे ही लिए करते हुए, मुझको ही समर्पित करते हैं,—इस प्रकार जो मुझ में अनन्य होकर, मेरा ही ध्यान करते हुए, मेरी ही भक्ति में लवलीन रहते हैं,—एकमात्र मुझ में ही चित्त को लगाये रखते हैं, उनको मैं अनायास मृत्यु-संसार सागर से पार करके परमपद प्राप्त कराता हूँ। यही गोपियों की सुलभ भक्ति थी, जिसको नन्ददास जी ने अपनी अनुपम प्रतिभा और कवित्वशक्ति के द्वारा सर्वसाधारण जनता के सन्मुख रखा है।

सुन्दर-उदर उदार, रुमावलि राजति भारी।
[१]हिअ-सरवर-रस-पूरि, चली जनु उँमगि पनारी ॥१०॥

[२]ता-रस की कुंडिका-नाभि, सोभित अस गहरी।
त्रिवली ता में ललित-भाँति जनु उपजति लहरी ॥११॥*

अति[३]-सुदेस कटि-देस सिंह सोभित सघनन अस।
जुव[४]-जन-मन आकरषत, बरषत प्रेम-सुधा-रस ॥१२॥†

गूढ-जानु, आजानु-बाहु, मद-गज गति लोलैं।
गंगादिकन पवित्र करत[५] अवनी पै डोलैं ॥१३॥

सुन्दर-पद-अरविन्द मधुर-मकरंद मुक्त जहँ।
मुनि-मन मधुकर-निकर सदा-सेवित लोभी तहँ ॥१४॥‡

पाठान्तर—

(त) १—हीयौ सरोवर रस भर्यौ चल्यौ मधु उँमग पनारी।

(टा०) २—जिहिँ रसकी कुण्डिका-नाभि सोभित अस गहरी।

* उक्त छन्द भारतेन्दु जी की प्रति—"भा० चन्द्रिका" में नहीं हैं।

(ग) ३—कटि प्रदेस सुन्दर सुदेस जघन सोभित अस।

(टा०),,—अति सुदेस कटि देस सिंह सुन्दर सोभित अस।

(च) ४—जोबन मन आकरषत, ।

,, —जुवतिन मन आकरसत बरसत प्रेम-सुधारस ॥

†, उक्त पद ट) प्रति में, और चन्द्रिका में नहीं हैं।

(क) ५—करन।

‡ उक्त पद (ख) प्रति में और "भा० चन्द्रिका" में नहीं है।

कृपा-रंग-रस-ऐंन, नैंन राजत रतनारे।
कृष्ण[1]-रसासव-पान, अलस[2] कछु घूँम-घुँमारे ॥५॥

स्रवन[3] कृष्ण-रस भरन गंड-मंडल भल दरसैं।
प्रेमानँद मिलि तासु, मन्द-मुसिकन-मधु-बरसैं ॥६॥

उन्नत-नासा, अधर-बिम्ब, सुक की छवि छीनी।
तिन[4] मधि अदभुत-भाँति लसति कछु इक मसि भीनी ॥७॥

कंबु-कंठ की रेख देख, हरि-धरम प्रकासै।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, जिहिं निरखति नासै ॥८॥

उर वर पैं[5] अति-छवि की भीर, कछु बरनि न जाई।†
जिहिं भीतर जगमगत निरन्तर कुँवर-कन्हाई ॥९॥

पाठान्तर—

(ग) १—कृष्ण रसामृत।
(रा०) २—करत।
(रा०) ३—स्रवन कृष्ण रस भवन गंड मण्डल भल दरसै।
प्रेमानन्द-मलिन्द मन्द मुसकनि मधु बरसै॥
(च) ४—तिनबिच अद्भुत भाँति लसै जु कछुक मसि भीनी।
(रा०) ,, तिन महँ अद्भुत-भाँति जु कछुक लसति मसि भीनी॥
(ट) ५—पर।

† उक्त पद में "अति छवि की" 'की" को ह्रस्व रूप से पढ़ना चाहिये, जिससे छंद में एक मात्रा न बढ़े और "यतिभग दोष" भी न हो। नंददास जी ने प्राय (अन्यत्र भी) ऐसा ही व्यवहार किया है।

सुन्दर-उदर उदार, रुमावलि राजति भारी।
[1]हिअ-सरवर-रस-पूरि, चली जनु उँमगि पनारी ॥१०॥

[2]ता-रस की कुंडिका-नाभि, सोभित अस गहरी।
त्रिवली ता मैं ललित-भाँति जनु उपजति लहरी ॥११॥*

अति[3]-सुदेस कटि-देस सिह सोभित सघनन अस।
जुव[4]-जन-मन आकरषत, वरषत प्रेम-सुधा-रस ॥१२॥†

गूढ़-जानु, आजानु-बाहु, मद-गज गति लोलैं।
गंगादिकन पवित्र करत[5] अवनी पै डोलैं ॥१३॥

सुन्दर-पद-अरविन्द मधुर-मकरंद मुक्त जहँ।
मुनि-मन मधुकर-निकर सदा-सेवित लोभी तहँ ॥१४॥‡

पाठान्तर—

(त) १—हीयौ सरोवर रस भरयौ चल्यौ मधु उँमग पनारी।

(रा०) २—जिहिँ रसकी कुंडिका-नाभि सोभित अस-गहरी।

* उक्त छंद भारतेन्दु जी की प्रति—"भा० चन्द्रिका" में नहीं है।

(ग) ३—कटि प्रदेस सुन्दर सुदेस जघन सोभित अस।

(रा०),,—अति सुदेस कटि देस सिह सुन्दर सोभित अस।

(ख) ४—जोबन मन आकरषत, ।

,, —जुवतिन मन आकरसत बरसत प्रेम-सुधारस ॥

†, उक्त पद ट) प्रति में, और चन्द्रिका में नहीं हैं।

(क) ५—करन।

‡ उक्त पद (ख) प्रति में और "भा० चन्द्रिका" में नहीं हैं।

जब दिन-मनि श्री कृष्ण, दृगन तैं दूरि भए दुरि ।
पसरि पर्यौ अँधियारि, सकल-संसार घुँमडि-घुरि ॥१५॥

तिमिर-ग्रसित सब-लोक-ओक दुखि देखि[1] दयाकर ।
प्रगट कियौ अद्भुत प्रभाव, भागवत[2] जु विभाकर ॥१६॥*

जे सँसार अँधियार[3]-गार मैं मगन भए परि ।
तिन-हित अद्भुत-दीप प्रकट कीनौ जु कृपाकरि ॥१७॥†

श्रीभागवत सुभ[4] नाम, परम-अभिराम अमित-गति[5] ।
निगम-सार, सुक[6]-सार, बिना-गुरु-कृपा अगम अति ॥१८॥

ताहू[7] मैं पुनि अति-रहस्य यह पंच-ध्याई ।
तन मैं जैसैं पंच-प्रान, अस सुक मुनि गाई ॥१९॥

पाठान्तर—

(रा०) १—लखि दुखित दयाकर ।
(प) ,—बिकल जब देखि दयाकर ।
(द) २—श्रीमान ।
* उक्त पद (ग) प्रति में और "भा० चन्द्रिका" में नहीं है ।
(ट) ३—असार अगर मैं ।
† उक्त पद "भा० चन्द्रिका" में नहीं है ।
(क) ४—सो नाम ।
,, ५—परम रति ।
(ख) ,,—प्रेम-मति ।
(प) ६—निरधार ।
(ख) ७—ताही मैं मनि अति ।

परम-रसिक इक मित्र, मोहि तिन आग्या दीनी ।
ताही[1] तैं यह कथा, जथा मति भाषा कीनी ॥२०॥

श्री वृन्दावन-वर्णन

अब[2] सुन्दर श्री बृन्दावन कौ गाइ सुनाऊँ ।
[3]सकल-सिद्धि-दाइक, नाइक, सब ही विधि पाऊँ ॥२१॥*

श्री वृन्दावन चिदघन, कछु छवि बरनि न जाई ।
कृष्ण ललित-लीला के काज धरि रह्यौ जडताई ॥२२॥†

जहँ[4] नग, खग, मृग, लता, कुंज विरुध-तन जेते ।
परत न काल-प्रभाव, सदाँ सोभित है तेते ॥२३॥

पाठान्तर—

(ग) १—आपुन विरद् पिछान जान निज करना कीनी ,
(घ) ,—तातैं मैं यह कथा जथा मति भाषा कीनी ।
(च) २—अति-सुन्दर अब वृन्दावन कौं ।
(ट) ,,—अब सुन्दर श्री वृन्दावन-गुन गाइ सुनाऊँ ।
(न) ,—अब सुन्दर श्री वृन्दावन—कछु गाइ सुनाऊँ ।
(प) ३—परम प्रीति, रस रीति प्रेम परिपूरन पाऊँ ।
(ट) ,,—सब विधि सुधि पाऊँ ।

*उक्त पद (क) प्रति में नहीं है ।

† यह पद (ग) (म) (घ) प्रतियों में नहीं हैं ।

(च) ४—पुनि तहँ खग मृग ।
(रा०) ,,—जहँ मृग, खग, नग कुंज ।
,, ,, नहि न काल गुन प्रभा सदाँ सोभित रहैं सत ॥

सकल जन्तु अविरुद्धि जहाँ हरि मृग सँग चरही ।
काम, क्रोध, मद, लोभ-रहित लीला अनुसरहीं ॥२४॥
सब[1] ऋतु सत बसत, रहति जहँ दिन-मनि श्रोभा ।
आँन[2] बनन जाकी विभूति करि सोभित-सोभा ॥२५॥
जो[3] लछमी निज रूप-अनूप[4] चरन सेवति नित ।
भ्रू[5] बिलसति जु विभूति जगत जगमग रहि जित-तित ॥२६
श्री अनन्त, महिमा-अनन्त, को बरनि सकै कवि ।
संकरसन सौं कछुक कही श्रीमुख[6] जाकी छवि ॥२७॥
[7]देवन में श्री रमा-रमन नाराइन प्रभु जस ।
कानन[8] में श्री बृन्दावन, सब-दिन सोभित अस ॥२८॥*

पाठान्तर—

(प) १—सब दिन रहति बसत कृष्ण-अवलोकनि सोभा ।
(रा०) ,,—सब दिन रहत बसंत लसै तहँ छिन छिन सोभा ।
(क) २—त्रिभुवन कानन जा विभूति ।
(ख) ,,—आनन्द लता विभूति काल सोभित जहँ सोभा ।
(रा०) सब कानन जाकी ।
(ट) ३—ज्यौं ।
४—रहति ।
(च) ५—भू ।
(च) ६—सुन्दर जाकी ।
(रा०) ७—*देवन में श्री रमा रमन नाराइन जैसैं ।
कानन में श्री बृन्दावन सोभित है ऐसैं ॥
(क) ८—बनन माहि बृन्दावन सुदेस ।

या मन की गर[1]-गानक, या वन-डीं वन आवैं ।
सेस, महेस, सुरेस, गनेसहु, पार न पावैं ॥२९॥

जहँ जेतिक द्रुम-जाति, कलपद्रुम सम सब लाइक ।
चिन्तामनि सी[2] भूमि, सबै चिन्तति फल-दाइक ॥३०॥

तिन-मधि इक जु कलपतरु[3] लगि रही जगमग-जोती ।
पत्र, मूल, फल, फूल सकल, हीरा, मनि[4] मोती ॥३१॥

तिन-मधि तिन के गन्ध[5] लुब्ध, अस[6] गान करति अलि ।
वरु किन्नर, गन्धरव, अपछरा, तिन पे गईं बलि ॥३२॥

अमृत-फुही, सुख-गुही, सुही, ज्यों परति रहति नित ।
रास-रसिक सुन्दर-पिय के[7] स्रम दूरि करन हित ॥३३॥

पाठान्तर—

(प) १—धनि ।

(प) २—मै ।

(क) ,,—सम सकल भूमि चिन्तति फल दाइक ।

(द) ३—कल्पवृच्छ वर जगमग-जोती ।

, ४—पात मूल फल ।

(प) ५—तिन मोतिन के गन्ध ।

(च) ६—धति ।

(च) ७—की ।

परमातम,[१] परब्रह्म, सबन के अंतरजामी।
नाराइन-भगवान, धरम करि सब के स्वामी ॥४२॥

बाल,[२] कुमार, पौगंड-धरम आक्रान्त लसत तन।
धरमी नित्त किसोर-कान्ह, मोहत सब कौ मन ॥४३॥

मृदु-उज्जल स्यामल सु अंग, अदभुत-सिँगार करि।
नवल-किसोर सु मोर-चंद्रिका, सुभग-सीस धरि ॥४४॥*

गल[३] मुक्तन की माल, लाल वनमाल धरैं पिय।
मंद[४]-मरुत-वस पीत-वसन, फरकत करखत हिय ॥४५॥†

अस अदभुत गोपाल-लाल, सब-काल बसत जहँ।
ताही तैं वैकुंठ[५]-विभव, कुंठित लागत तहँ ॥४६॥

पाठान्तर—

(क) १—परम आतमा राम, धरम कर अंतर जामी।
(ट) ,,—परमातम धुरि धरम, सबन के अंतरजामी।
(च) ,,—सरव आतमाराम ।
(ट) २—सिसु, कुमार, पौगंड धरम रुचि ललित लसत तन।
(प) ,,—बाल, कुँवर, पौगंड धरम आकार ललित-तन।
*उक्त पद (क) प्रति में नहीं है।
(प) ३—कँठ मुतियन की माल ज्वाल वनमाल ।
(प) ४—मद मधुर हरि पीत वसन, फरकत ।
† उक्त पद (क) प्रति में नहीं है।
(प) ५—वैकुंठ विभौ ।

सरद-रजनी-वर्णन

जदपि[१] सहज-माधुरी, बिपिन सब दिन सुखदाई।
तदपि रँगीली-सरद-समैं मिल अति-छवि छाई ॥४७॥

ज्यौं[२] अमोल-नग जगमगाइ, सुन्दर-जराव सँग।
रूपवन्त, गुनवन्त, बहुरि[३] भूषन-भूषित-अँग ॥४८॥

रजनी-मुख-सुख देखि,[४] ललित मुकुलित जु मालती।
ज्यौं नव-जोबन पाइ, लसति गुनवती बाल-ती[५] ॥४९॥

छवि सौं फूले[६]-फूल अवर अस लगी लुनाई।
मनौं[७] सरद की छपा छबीली बिलसति आई ॥५०॥

पाठान्तर—

(रा०) १—सहज-माधुरी वृन्दावन, सबदिन सुखदाई।
(प) २—ज्यौं अद्भुतनग जगमगात, सुन्दर जराव-सँग।
(प) ३—भूरि ।
(क) ४—देखि ललित प्रफुलित जु मालतिय।
(क) ५—तिय।
(ट) ६—फूले और फूल, अस लगी लुनाई।
(रा०) ,, छवि सौं फूले फूल, अतुल अस लगी लुनाई।
(भ) ,,—नव फूलन सौं फूलि फूल, अस लगति लुनाई।
(प) ७—मनहुँ छिपा, बिहँसति आई॥
(भ) ,,—सरद छबीली छपा हँसति छवि सौं मनुआई॥

सुनति चलीं ब्रज-बधू, गीत-धुनि कौ मारग गहिँ ।
भवन-भीति द्रुम-कुंज-पुंज, कित हूँ अटकीं नहिँ ॥६०॥

नाँद[1]-ब्रह्म कौ पथ रँगीलौ, सूच्छम-भारी ।
तिहि[2] मग ब्रज-तिय चलीं, आँन कोऊ नहिँ अधिकारी ॥६१॥

सुद्ध-प्रेम-मय रूप, पंच[3]-भूतन तैं न्यारी ।
तिन्हैं कहा कोउ गहै, जोति[4] सी जग उजियारी ॥६२॥

जे[5] रुकि गईं घर अति-अधीर, गुनमय सरीर बस ।
पुन्न[6], पाप, प्रारब्ध रच्यौ, तन पच्यौ नाहिं रस ॥६३॥

परम-दुसह-श्रीकृष्ण-बिरह-दुख ब्याप्यौ तन[7] मैं ।
कोटि-बरस लौं नरक-भोग-अघ, भुगते छन[8] मैं ॥६४॥

पाठान्तर—

(ल) १—नाँद अमृत ।
(रा०) ,,—राग अमृत ।
(च) २—तिहि मग तिय भज चलीं ।
(त) ३—सुद्ध-जोति-मै रूप, पंच भौतिक तैं न्यारी ।
(च) ४—जोति सी जगत उजारी ।
(रा०) ५—जे रहि गईं घर अति अधीर ।
(ल) ६—पाप पुन्न प्रारब्ध रच्यौ तन, नाहिं पच्यौ रस ।
(क) ७—जिन मैं ।
(ग) ,,—तिन मैं ।
(प) ८—छिन मैं ।

पुनि[१] रचक धरि ध्यान, पीय[२] परिरंभ दियौ जब ।
कोटि-सरग सुख-भोग, छिनक[३] मंगल भुगते सब ॥६५॥

लोह[४]-पात्र पाखान परसि कंचन ह्वै सोहैं ।
[५]नंद-सुवन को परसि प्रेम, यह अचरज कोहैं ॥६६॥

ते[६] पुनि तिहिं मग चलीं, रँगाली तजि गृह-संगम ।
जनु[७], पिंजरन तैं छुटे, छुटे नव-प्रेम विहंगम ॥६७॥

कोउ तरुनी गुनमै[८] सरीर, तिन संग चली झुकि ।
मात, पिता, पति, बन्धु, रहे झुकि, झुकि न रहीं रुकि ॥६८॥†

पाठान्तर—

(रा०) १—जिय पिय कौ धरि ध्यान तनकि आलिंगन किय जब ।

(क) २—पिया ।

(प) ३—छीन कीन मंगल सब ।

(रा०) ४—इतर धातु पाहनहि परसि कंचन ह्वै सोहै ।

(प) ,,—धातु-पात्र ।

(,,) ५—नंद सुवन सौं परम प्रेम यह अचरज को है ।

(ढ) ६—तेउ पुनि तिहि ।

(,,) ७—जनु पिंजरा तैं उड़े छुड नव-प्रेम विहगम ।

(क) ८—गुनमय सरीर ही सहित चलीं दुकि ।

† उक्त पद्य (ट) प्रति म नहीं है ।

सावन-सरिता रुकै[1] कहूँ करौ कोटि-जतन-अति[2] ।
कृष्ण-हरे[3] जिन के मन ते क्यों रुकै अगम-गति ॥६९॥

[4]चलति अधिक छवि फवति, स्रवन मनि कुंडल झलकैं ।
सकित लोचन चपल चारु, नव-विलुलित-अलकैं ॥७०॥

जदपि[5] कहूँ-के-कहूँ तियन[6] आभरन बनाए ।
हरि-पिय पै अनुसरत, जहाँ के तहँ चलि आए ॥७१॥*

कहुँ लखियतु कहुँ नाहिँ, सखीं बन वीच बनीं यौं ।
बिजुरिन कीसी छटा, सघन-घन माँझ चली ज्यौं ॥७२॥*

पाठान्तर—

(ट) १—नाहि रुकै करौ कोटि ।
(थ) ,,—नाहि रुकै करै कोटि ।

(रा०) २—सावन सरिता न रुकहि करै जो जतन कोउ अति ।

(क) ३—गहे ।

(रा०) ४—चलति अधिक-छवि फबी स्रवन मैं कुंडल झलकैं ।
सकित लोचन-चपल ललित छवि बिलुलित अलकैं ।

(क) ५—जदपि तियन आभरन कहूँ के कहूँ बनाए ।

(ट) ६—वधून ।

* उक्त दोनों पद्य (क) प्रति में नहीं है ।

कुजन-कुजन निसरत वर-आनन सोभित अस ।
तम फाँने तैं निकर लसत राका-मयक जस ॥७३॥

आइ उँमग सौं मिलीं रँगीली-गोप-बधू यौं[1] ।
[2]नंद-सुवन-नागर-सागरसौं, प्रेम-नदी ज्यौं ॥७४॥

परीच्छित-प्रश्न

परम-भागवत-रतन रसिक जु परीच्छित-राजा ।
प्रस्न करयौ रस-पुष्टि करन निज-सुख के काजा ॥७५॥

[3]श्रीभागवत कौ पात्र जानि जग कौ हितकारी ।
उदर-दरी में करी कान्ह जाकी रखवारी ॥७६॥

जाकौ सुन्दर-स्याम-कथा छिन-छिन नई[4] लागै ।
ज्यों लपट पर-जुवति-बात सुनि-सुनि[5] अनुरागै ॥७७॥

पाठान्तर—

(ट) १—यस ।

(प) २—नद सुवन सुन्दर सागर सौं प्रेम नदा जस ।
(रा०) ,,—नंद-सुवन सागर सुन्दर सौं प्रेम नदी जस ।

(क) ३—परम धरम कौ पात्र जानि ।

(,,) ४—प्रिय ।

(,,) ५—श्रुति ।

[1]अहो मुनि ! क्यौं गुनमय सरीर परिहरि पाए हरि ।
[2]जानि भजे कमनीय-कान्ह, नहिं ब्रम्ह-भाव करि ॥७८॥

उत्तर

तबै[3] कही सुकदेव देव यह अचरज नाँही ।
सरव-भाव-भगवान-कान्ह जिनके[4] उर माँहीं ॥७९॥

परम-दुष्ट-सिसुपाल बालपन तैं निंदक-श्रति ।
जोगिन कौं जो दुरलभ [5]सुरलभ सो पाई गति ॥८०॥

हरि[6]-रस ओपी गोपी सबहि तियन तैं न्यारी ।
[7]कमल-नैन गोविन्द-चन्द की प्रानन-प्यारी ॥

पाठान्तर—

(,,) १—हे मुनि, क्यौं गुनमय सरीर सौं पाए हैं हरि ।

(प) २—जो न भजे कमनीय कान्ह अति-ब्रम्ह भाव करि ।

(क) ३—तब कहि श्री सुकदेव देव अचरज यह नाहीं । -

(क) ४—कृष्ण जिनके मन माहीं ।

(च) ५—सुलभहि सो पाई गति ।

(च) ६—वे हरि रस ओपी गोपी सब तिरयन तैं न्यारी ।

(प) ७—कमल-नयन गोविंद चंद जू की प्रान पियारी

कृष्ण-दर्शन

तिनके[१] नूपुर-नाँद सुने, जब परम-सुहाए ।
तब हरि के मन, नैन, सिमटि सब स्रवनन आए ॥८२॥

रुनुक-झुनुक पुनि[२]भली-भाँति सौं प्रगट भई जब ।
पिय के अँग-अँग सिमटि मिले[३] है रसिक नैन तब ॥८३॥

सब के मुख अवलोकति, पिय के नैंन बने यों ।
सुचि[४]-सुन्दर-ससि माँझि, अरबरे द्वै चकोर ज्यों ॥८४॥

[५]अति-आदर करि लई, भई, चहुँ-दिसि ठाडी अनु ।
छटा[६]-छबीली छेकि रही मृदु-घन-मूरति जनु ॥८५॥

पाठान्तर—

(क) १—जिनके नुपुर नाँद सुने अति परम सुहाए ।

(ख) २—झनक झनक पुनि भांति छबीली जब प्रगट भई सब ।

(,,) ३—छबीले नैन मिले सब ।

(प) ४—बहुत सरद ससि ।

(,,) ५—अति आदर करि लई भई पिय पै ठाढ़ी अनु ।

(,,) ६—छटन छबीलो मिलि छेकी मंजुल मूरति जनु ।
(ट) ,,—छबिली-छटान मिलि छेक्यौ मंजुल घन मूरति जनु ।

नागर[१]वर नँद-नंद चद, हँसि-मद-मद तन ।
बोले बाँके-बैंन, प्रेम के परम ऐंन-सब ॥८६॥

उज्जल-रस कौं यह सुभाव, बाँकी-छबि पावै ।
बक-चहनि, बरु बक-कहनि, अति-रसहि बढावै ॥८७॥

ए सब नवल-किसोरी, भोरी[२], भरीं नेह-रस ।
तातैं समझि न परी, करीं पिय परम-प्रेम बस ॥८८॥

जैसैं नाइक गुन सरूप, अति-रसिक-महा है ।
सब-गुन मिथ्या होइ, नैंकु जो बंक न चाहै ॥८९॥

त्यौं[३]कहि कैउक वचन नरम, कैउक रस-बस कर ।
कहे[४] कैउक तिय-धरम, भरम-भेदक सुन्दर-बर ॥९०॥

पाठान्तर—

(प) १—नागर, नगधर, नद् चद् ।
(क) ,,—सब नागर-गुरु नद् चद्, हँसि मद् मंद् अब ।

(प) २—ए सब नवल किसोरी, गोरी भरीं प्रेम रस ।

(,,) ३—ज्यौं सुन्दर नाइक सुख दाइक रसिक-महा है ।

(च) ४—कैउक-बचन कहि नरम, कहे कैऊ रस बर कर ।
(य) ,,—कैक बचन कहे नरम, कैक रसबर कर्मनि पर।

(प) ५—कैउक कहि तिय धरम ।
(च) ,,—एकु कहे तिय धरम, परम-भेदक सुन्दर बर।

गोपी-दशा-वर्णन

लाल[1]-रसालहि बक्र-वचन सुनि, थकित भई यौं।
बाल[2]-मृगिनि की पाँति, सघन-वन भूलि परी ज्यौं ॥९१॥

मँद परसपर हँसीं, लसीं, तिरछी [3]अँखियनि अस।
रूप-उदधि इतरात, रँगीली-मीन-पाँति जस ॥९२॥

जनै कहाँ पिय जाउ, अधिक चित-चिंता बाढ़ी।
पुतरिनि की सी पाँति रहि गईं इक-टक ठाढ़ी ॥९३॥

[4]दुख सौं दबि छबि-सींव, ग्रीव, लै चलीं नाल सी।
अलक-अलिन के भार, नमित जनु कमल-माल सी ॥९४॥

[5]हिय भरि बिरह हुतास, उसासन-सँग आवत झर।
चले कछुक मुरझाइ, मद-भरे अधर-बिंब-वर ॥९५॥

पाठान्तर—

(क) १—पिय लालहि के बक ।
(ट) ,,—लाल रसिक के बक बचन सुनि, चकित भई यौं।
(च) २—बाल-मृगन की माल, सघन ।
(त) ,,—बाल मृगन की सगति, बन घन भूलि ।
(क) ३—अँखियाँ अस।
(रा०) ४—दुख के बोझ छवि सींव, ग्रीव ने चली नाल सी।
अलक अलिन के भार, निहुरि मनु कमल-नालसी।
(ठ) ५—हिय भरि बिरह हुतासन, साँसन सँग आवत झर ।

गोपी-कथन

[1]तव बोली व्रज-बाल, लाल ! मोहन अनुरागी ।
सुन्दर[2] गदगद-गिरा, गिरिधरहिं, मधुरी लागी ॥९६॥

अहो मोहन ! अहो माननाथ !! सुन्दर[3]-सुखदाइक !!! ।
क्रूर-वचन जिनि कहौ, नाहिं[4]ए तुम्हरे लाइक ॥९७॥

[5]जो पूँछे कोउ धरम, तबहिं तासौं कहिऐ पिय ? ।
बिनु पूँछै ही धरम, कितहिं कहिऐ, दहिऐ हिय ॥९८॥

धरम[6], नैम, जप, तप, व्रत, संजम, फलहिं बतावै ।
यह कहुँ नाहिं न सुनी, जु फल फिरि धरम सिखावै ॥९९॥

पाठान्तर—

(थ) १—तब बोली व्रज नवल बाल, लालहिँ अनुरागी ।
(रा०) २—गद गद सुन्दर गिरा गिरि गिरिधरहि मधुरी लागी ।
(च) ३—सोहन ।
(रा०) ,,—अहो हो मोहन—प्रान नाथ, सोहन सुखदाइक ।
(ट) ४—अहो नहिँ तुम्हरे लाइक ।
(रा०) ,,—निठुर बचन जनि कहो, नाहिँ न ए तुम्हरे लाइक ।
(ट) ५—जब कोऊ पूँछे धर्म तभी तासों कहिये पिय ।
(फ) ६—नैम, धरम, जप, तप नहिँ कबहूँ फल जु बतावै ।
(ड) ,,—नैम धरम, जप तप ए सब कोउ कहहिँ बतावै ॥

[१]औरु तिहारौ रूप, धरम के धरम हिँ मोहै।
घर मैं को तिय भरमैं, भरमैं या आगैं कोहै ॥१००॥

तैसिय पिय की मुरली, जुरली, अधर-सुधा-रस।
सुनि निज-धरम न तज, तरनि त्रिभुवन में को अस ॥१०१॥

[३]नग, खग औरु मृगन हूँ नाहिँन धरम रहया है।
छाँनि ह्वै रह्यौ पिया! अब न कछु जात कह्यौ है ॥१०२॥*

सुन्दर पिय कौ बदन निरखि कै [४] को नहिँ भूलै? [५]।
रूप-सरोवर माँझि सरस-अम्बुज जनु [६]फूलैं ॥१०३॥†

[६]कुटिल अलक, मुख-कमल, मनो मधुकर मतवारे।
तिन में मिलि गए चपल-नैन, है मीन हमारे ॥११४॥‡

पाठान्तर—

(च) १—धर तुम्हरौ इहि रूप, धरम के भरमहि मोहै।
धरमु के तुम धरम, भरम या आगैं कोहै ॥

(क) २—याही पिय की मुरली, जुरली, अधर-सुधा-रस।

(प) ३—नगन, खगन, औ मृगन तलक नहिँ धरम गह्यौ है।

*उक्त पद्य (फ) प्रति में नहीं है।

(च) ४—को सो सुन भूयौ।

(,,) ५—भूल्यौ।

† उक्त पद (क) प्रति में नहीं है।

(ट) ६—कुटिल अलक मनु अम्बोले मधुकर मतवारे।
तिन मधि मिलि गए पिया! नैन ह्वै मधुप हमारे ॥

‡ उक्त पद (क) प्रति में नहीं है।

चितवनि मोहन-मंत्र, भौंह जनु मनमथ-फाँसी ।
[1]निपटि-ठगोरी आहि, मद-मुसकनि-मृदु-हाँसी ॥१०५॥*

अधर-सुधा के लोभ भई, हम दासि तिहारी ।
[2]ज्यों लुब्धी पद-कमल, चंचला-कमला-नारी ॥१०६॥†

[3]जो न देहु अधरामृत, तौ सुनि सुन्दरि-हरि ।
करि हैं यह तन भसम, विरह-पावक मैं परि-परि ॥१०७॥‡

[4]पुनि तुम्हरे पद परसि, बहुरि धरि है सुन्दर-अंग ।
पीवहिँगी निधरक अधरामृत, पुनि सँग-ही-सँग ॥१०८॥§

पाठान्तर—

(प) १—निपट ठगोरी आहि मन्द मृदु मादक हाँसी ।

*उक्त पद (ख) प्रति मे नहीं हैं ।

(प) २—लुब्धी ज्यौं पद कमला, नवला, चपला नारी ।

† उक्त पद (ट) प्रति में नहीं हैं ।

(ट) ३—जो न देहु यह अधर अमृत, सुनि हो मोहन हरि,
तौ करिहैं तन छार बार पावक मैं परि परि ॥

‡ उक्त पद (च) प्रति में नहीं हैं ।

(ट) ४—पुनि पद पिय के परसि ।
(त) ,,—तब पिय पदवी पाइ, बहुरि धरिहौ सुन्दर अंग ।
(ध) ,,—निधरक ह्वै फिरि पीवहिँगी, अधरामृत सँग ही सँग ।
निधरक ह्वै इह अधर अमृत पैह फिरी हैं सँग ॥

§ उक्त पद (प) प्रति में नहीं हैं ।

[1]प्रेम-पगे सुनि वचन, आँच-सी लगी आइ जिय।
पिघलि चल्यौ नवनीत,[2]मीत सुन्दर मोहन-हिय ॥१०९॥*

बिहँसि मिले नँदलाल, निरखि ब्रज-बाल बिरह-रस।
जदपि आतमाराम, रमत भए परम प्रेम-रस ॥११०॥

बिहरत बिपिन-बिहार, उदार[3]-नवल-नँदनन्दन।
नव-कुमकुम-घनसारु, चारु, चरचित चित[4] चंदन ॥१११॥

अदभुत-साँवल अंग, बन्यौ [5]अद्भुत-पीताम्बरि।
[6]मूरति धरैं सिंगार, प्रेम-अम्बर ओढ़ै-हरि ॥११२॥

पाठान्तर—

(च) १—सुनि गोपिन के बचन प्रेम के आँच सी लगी जिय।

(छ) २—मीत मोहन सुन्दर हिय।

(य) ,,—नवनीत- सदन हिय।

*उक्त पद (प) प्रति (व) और (ट) में नहीं हैं।

(ट) ३—रसिक ।

(प) ४—तन ।

(त) ५—तन पीत-बसन मनु।

(ध) ,,—पट पीत बसन तन।

(,,) ६—मूरति धरि सिंगार, प्रेम अंबर पहिरैं मनु।

(ट) ,,—मुकुट धरै सिंगार, प्रेम अंबर ओढ़ै हरि।

(प) ,,—प्रेम अंबर पहिरैं धन।

विलुलित[1] उर-बनमाल, लाल जब चाल चलति वर ।
[2]कोटि-मदन की भीर, उठति छवि लुठति पगन पर ॥११३॥*

[3]गोपी जन-मन-मोहन, मोहन लाल बने यों ।
[4]अपनी दुति के उडगन, उडपति घन खेलति ज्यों ॥११४॥

कुजन-कुजन डोलति, मनु[5] घन तें घन आवत ।
लोचन त्रिपित-चकोरन के चित[6] चाप चढ़ावत ॥११५॥

सुभ[7]-सरिता के तीर, धीर, बलबीर गए तहँ ।
कोमल-मलै-समीर, छबिनि की महा-भीर जहँ ॥११६॥

पाठान्तर—

(त) १—बिगलति उर बनमाल, लाल जब चलत चाल वर ।

(,,) २—पुनि गिरति चरन तर ।

(ध) ,,—कोटि मदन की पीर उठत इत लुठत पगन-तर ।

* उक्त पद्य (क) और (च) प्रति में नहीं है ।

(क) ३—गोपी जन गन मौहन मौहन लाल बने यों ।

(,,) ,,—अपनी दुति के ओज लिये उड़पति खेलति घन ॥

(ट) ,,—अपनी द्युति के उजरे-उड़पति, मनु खेलति घन ।

(प) ४—"अपनी-अपनी दुति के उड़पति घन खेलत ज्यौं ।

(क) ५—जनु घन तें घन आवन ।

(ठ) ,,—मनु चाँप चढ़ावन ।

(ट) ७—सुभग बिटप के तीर ।

(त) ,,—सुभग सरित के तीर धीर ।

कुसुम-धूरि धूँधरी कुंज, छवि-पुंजन छाई ।
[1]गुंजत मंजु मलिंद, वेनु जनु बजति सुहाई ॥११७॥

इत महकति मालती, चारु[2] चंपक चित-चोरत ।
उत[3] घनसार, तुसार, मिली मंदार झकोरत ॥११८॥

[4]इत लवंग-नव-रंग, एलची झेलि रही रस ।
[5]उत कुरवक, केवरा, केतकी गंध-बंध-बस ॥११९॥

इत तुलसी छवि-हुलसी, छाँड़ति [6]परिमल-पूंटे ।
उत कमोद-[7]आमोद, गोद, भरि-भरि सुख लूटें ॥१२०॥

फूलन-माल बनाइ, लाल पहिरति[8]-पहिरावति ।
सुमन सरोज सुधानर, ओज मनोज बढ़ावति ॥१२१॥*

पाठान्तर—

(ट) १—गुंजत मंजु अलिंद, बैनु सी बजत सुहाइ ।
(न) २—इते चंपक चित चोरत ।
(छ) ३—"औ ।
(च) ,,—यक ।
(प) ,,—इत घनसार तुषार, मलै मन्दार झकोरत ।
(प) ४—राइबेलि वर एल बेलि, भृंगमद्धहिं बेलि इत ।
(,,) ५—नव कुरवक, केवरौ, केतकी-गंध मधु-बन ।
(त) ६—प्रबल जु लपटें ।
(क) ७—समसोद् गोद् भरि भरि सुख दुपटें ।
(ट) ८—सुधावत ।
* उक्त पद्य (क) और (च) प्रति में नहीं है ।

रूप भरीं, गुनभरीं, भरीं पुनि परम-प्रेम-रस ।
[1]क्यों न करें अभिमान, भयौ मोहन जिनि के बस ॥१३०॥

[2]नदी-नीर गंभीर, तहाँ भल भँवरी परहीं ।
[3]छिल-छिल सलिल न परें, परें तौ उनि नहिं[4] करहीं॥१३१॥

[5]प्रेम-पुंज बरधन कारन, ब्रजराज-कुँवर-पिय ।
[6]मंजु-कुंज में तनक दुरे, अति प्रेम-भरे-हिय ॥१३२॥

इति श्रीमद्भागवते-महापुराणे रास-क्रीड़ा वर्णन
रसिक जीवन-प्राणनाम प्रथमोऽध्याय ।*

पाठान्तर—

(ट) १—करे क्यौं न अभिमान, कान्ह भगवान किए बस ।
(च) ,,—क्यौं न करै अभिमान, कियौ मोहन अपने बस ॥
(छ) २—जहँ नदि-नीर-गँभीर, तहाँ जल भँवरी परईं ।
(प) ३—सलिल न परे, छिल छिले, परे पै छुवि ना करहीं ॥
(रा०) ४—करई ।
(य) ५—प्रेमहिँ पुंज बढ़ावन, कारन प्यारौ मोहन पिय ।
(ट) ,,—प्रेम जु पुंज बढ़ावन, सिरी ब्रजराज कुँवर पिय ।
(,,) ६—कुंज मंजु मैं दुरे नैंकु, अति भरयौ प्रेम हिय ॥

* श्रीमद्भागवत् में उक्त अध्याय का नाम "भगवत् रास क्रीड़ा वर्णन" करके लिखा है ।

द्वितीय अध्याय

[1]मधुर-वस्तु जे खात, निरतर सुख तौ भारी
निच-निच कटु औ अम्ल, तिक्त तै अति रुचिकारी ॥१॥*

[2]ज्यौं पट पुट के दिऐ, निपट-अति-सरस पर्ँ' रँग ।
[3]तैसैई रचक-विरह, प्रेम कौ पुज बढ़ै अँग ॥२॥

पाठान्तर—

(त) १—वस्तु मधुर जो खाइ, निरतर सुख ह्वै भारी ।
बीच बीच कटु, अमल, तिक्त, अतिसै रुचिकारी ॥

* राधाकृष्ण दास जी ने उक्त पद्य का पाठ, मूल में इस प्रकार लिखा है—
ज्यौं कोऊ परम मधुर मिश्री सो खात निरन्तर ।
बीच बीच सन्धान, निम्ल-रस अतिसय रुचिकर ॥

(अ) २—जैसैं पट पुट दऐं, निपट अति चढ़ै सरस रँग ।
(क) ,,—ज्यौं पटु पुट के दिएँ, निपट ही रसहि परत रँग ।
(ट) ,,—ज्यौं पट कौं पुट दये , सरस अति चढ़ै निपट रँग ।

(,,) ३—त्यौंई रचक विरह, बढ़ावत प्रेम पुज अँग ॥
(च) ,,—तैसैंहीं थर विरह, प्रम के पुंज बढ़ै अँग ॥- -
(छ) ,,—रच विरह के बढ़ै, प्रेम के पुज प्रगट अँग ॥

[१]जिन कौं नैन-निमेप-ओट कोटन-जुग जाहीं ।
[२]तिन कौं घर, वन, कुंज, ओट दुख-गनना नाहीं ॥३॥

[३]ठगी गईं ब्रज-बाल, लाल गिरिधर-पिय-बिन यौं ।
[४]निधन महा-धन पाइ, [५]बहुरि फिरी जाइ खोइ त्यौं ॥४॥

[६]ह्वै गईं विरह-विकल सब पूँछति द्रुम, वेली, वन ।
[७]को जड़, को चैतन्न, न जानति कछु बिरही-जन ॥५॥

पाठान्तर—

(क) १—जिनके नेननि निमिष ओट, कोटिक-जुग जाहीं ।

(प) २—तिन कौं गहवर कुंज ओट दुख गनना नाहीं ॥
(फ) ,,—तिनके ग्रह, बन, कुंज ओट, दुख अगनित आँहीं ॥

(ब) ३—रहीं ठगी सी बाल, लाल गिरधर पिय बिनु यौं ।
(प) ,,—ठगि सी रहीं ब्रज-बाल ।
(रा०) ,,—थकि सी रहीं ब्रजबाल ।

(स) ४—निधन महा धन पाइ, बहुरि ज्यों जाइ भईं त्यौं ॥
(रा०) ५—बहुरि पुनि जात रहे त्यौं ॥

(त) ६—ह्वै गईं विरह विकल, मन पूँछति द्रुम, वेली घन ।
(द) ,,—ह्वै गईं विरह विकल, सब बूझत द्रुम, वेली, वन ।

(ज) ७—को जड़, को चैतन्य, न जानैं कछु विरही जन ॥
(ट) ,,—जड़ को, को चैतन्य, कछु न जानति विरही जन ॥

[1]हे मालति ! हे जाति-जूथि के !! सुनि हित दै-चित ।
मान-हरन, मन-हरन, लाल-गिरिधरन लखे इत ॥६॥

[2]हे केतकि ! इत तैं चितए, कितहूँ पिय रूसे ।
[3]कै नँद-नदन मँद-मुसकि, तुमरे मन-मूँसे ॥७॥

[4]हे मुक्ताफल-बेलि ! धरैं मुक्ताफल-माला ।
[5]निरखे नैन-बिसाल, लाल-मोहन नँदलाला ॥८॥

पाठान्तर—

(क) १—हे मालती ! हे जाति जूथि !! सुनि दै हित चित ।
मान-हरन मन हरन गिरिधरन लाल लखे इत ॥

(क) २—हे कतकी ! इत तू कितहू चितए ! पिय रूसे ।
(ख) ,,—अहो केतकि ! इत मित हूँ तुम चितए पिय रूसे ।
(घ) ,,—हे कतकी ! कितहूँ इत त चितए पिय रूसे ।

(च) ३—कै सा मोहन मुसकि मन्द, तुव मन मूँसे ॥
(प) ,,—नद नँदन किधों मद मुसकि तुम्हरे मन मूँसे ॥
(फ) ,,—किधौं नँद नदन मद मुसकि तुमरेउ मन-मूसे ॥
(य) ,,—नँदनदन कै मुरि मुसिकन, तुमरेउ मन मूसे ॥

(ख) ४—अहो ।

(ट) ५—देखे नैन बिसाल, मोहन नँद के लाला ॥
(त्र) ,,—देखे कहूँ बिसाल नैन, तें नँद के लाला ॥
(झ) ,,—देखे नैन बिसाला, मोहन नँद के लाला ॥

[1]हे मन्दार उदार वीर ! करवीर महा-मति ।
देखे कहुँ बलबीर, धीर, मन-हरन धीर-गति ॥९॥

[2]हे चन्दन ! दुख-दन्दन ! सब की जरनि जुड़ावौ ।
नँद-नदन, जग-बदन, चदन, हमहिँ [3]बतावौ ॥१०॥

[4]पूँछौरी ! इन लतन, फूलि रहीं फूलन जोई ।
सुन्दर-पिय के परसि बिना, अस फूल न होई ॥११॥

[5]हे सखि ! ए मृग-बधू, इनहिँ किन पूँछौ अनुसरि ।
[6]डहडहे इनके नैन, अबहिँ कहुँ देखे हैं हरि ॥१२॥

पाठान्तर—

(न) १—अहो उदार मन्दार-बीर ! हर-पीर महा मति ।
तैं देखे बलबीर, धीर, मन-हरन धीर गति ॥
(अ) २—अहो चदन, सुख कदन, दुख सब जरत सिरावहु ।
(क) ,,—हे दुख-कदन ! चदन ! सब की जरनि सिरावहु ।
जग-बदन, नँद-नदन, चदन हमैं बतावहु ॥
(ग) ३—मिलावहु ॥
(द) ४—बूझहुरी ! इन लतनि, फूलि रहीं फूलनि जोइ (मोंहीं) ।
सुन्दर पिय कर परसि बिना, अस फूलि न होइ (होहीं) ॥
(अ) ५—हैं सखि ! ये मृग-बधू ! इनहिँ किन बूझहु अनुसरि ।
(क) ,,—हे सखि ! हे मृग बधू इन्हैं पूछौ किन अनुसरि ।
(ग) ६—इनके डह डहे-नैन, अबै देखे हैं कहुँ हरि ॥
(रा०) ,,—डह-डह इनके नैंन, अबहीं कतहूँ चितए हरि ॥

[१]अहो पवन ! सुभ-गमन, सुगंध [२]सँग थिर जु रही चलि ।
[३]दुःख-दवन, सुख-भवन, रवन, कहुँ तें चितए ललि ॥१३॥*

[४]अहो चंपक वरकुसुम ! तुमहिँ छवि सब सौं न्यारी ।
[५]नेंकु बतावहु अहो ! जहाँ हरि कुंज-बिहारी ॥१४॥†

[६]अहो अब ! अहो निंब ! कदंब ! क्यों रहे मौन गहि ।
[७]अहो उतंग वट ! सुंग वीर ! कहुँ तुम इत-उत लहि ॥१५॥‡

पाठांतर—

(च) १—अहो सुभग बन सुगंध ! पवन सँग थिर जु रही चलि ।

(छ) २—मैसुक थिर ह्वै रहि ।

(च) ३—सुख के भवन, दुख दमन, रमन इत तें चितए चलि ॥

(छ) ,,—दु ख दवन औ रवन, कहूँ इत उत है लहि ॥

* उक्त पद (क) और (च) प्रति म नहीं है ।

(ट) ४—अहो चंपक ! अहो कुसुम ! तुमें सब सौं छबि न्यारी ।

(प) ५—नेंकु बताइ जु देहु, जहाँ हरि कुंज बिहारी ॥

† उक्त पद हमारी हस्त लिखित प्रति में नहीं है और साथ ही (फ) प्रति में भी नहीं है ।

(क) ६—अहो कदंब ! अहो निंब ! अंब ! कत रहे मौन गहि ।

(त) ७—अहो उतंग वट ! सुरँग पीय, कहुँ इत उत तुम लहि ॥

(रा०) ,,—अहो बकुल सुरंग बीर ! कहुँ इत उत लहे लहि ॥

‡ उक्त पद 'चन्द्रिका' में नहीं है ।

[१]अहो असोक ! हरि-सोक, लोक-मनि पियहि बतावहु ।
अहो पनस ! सुख-सनस, मरति [२]तिय अमिय पियावहु ॥१६॥*

[३]जमुना-तट के विटप-पूँछि, भई निपट-उदासी ।
[४]क्यों कहिहे सखि ! महा-कठिन, तीरथ के वासी ॥१७॥

[५]हे अवनी ! नवनीत-चोर, चित-चोर हमारे ।
[६]राखे किते दुराइ, बतावहु प्रान-पियारे ॥१८॥

पाठान्तर—

(च) १—हे असोक ! हर सोक, लोक मनि पीया बतावौ ।
अहो पनस ! सुभ सरस, मरत तिय अमी पियावौ ॥

(रा०) २—तीय सब मरति जियावहु ।

* उक्त पद (क) और (ड) में प्रतियों नहीं हैं ।

(य) ३—जमुन निकट के विटप, बूझि भई निपट उदासी ।
कहि हैं क्यौ सखि ! महा-कठिन ए तीरथ वासी ॥

(च) ४—क्यों कहि हैं सखि ! ए महा कठिन हैं तीरथ वासी ॥

(घ) ५—अहो ।

(च) ६—राखे कनहुँ छिपाइ, कहौ किन प्रान पियारे ॥
(प) ,,—राखे हैं कित हीं दुराइ, अहो धौं प्रान पियारे ॥
(च) ,,—राखे कितहुँ छिपाइ, कहौ धौं प्रान हमारे ॥

[1]हे तुलसी ! कल्यान, सदाँ गोविँद-पद-प्यारी ।
[2]क्यों न कहौ सखि ! नद-नँदन सौं बिथा हमारी ॥१९॥

[3]जहँ आवत तम-पुंज, कुंज-गहवर तरु-छाँहीं ।
[4]अपने मुख-चाँदने, चलतिँ सुन्दरि बन-माँहीं ॥२०॥

[5]इहि बिधि बन-बन ढूँढि, पूँछि उनमत की नाईं ।
करन लगीं मन-हरन-लाल-लीला-मन-भाई ॥२१॥

[6]मोहन लाल रसाल हिँ, लीला इनहीं सोहैं ।
[7]केवल तनमैं भई, न जानैं कछु हम कोहैं ॥२२॥

पाठान्तर—

(घ) १—कहौ ।

(ख) २—क्यौं न कहौ तुम, मन मोहन सौं, बिथा हमारी ॥

(क) ,,—क्यौं न कहति तू नद नँदन सौं बृथा जु सारी ॥

(ट) ,,—क्यौं न कहैरी ! नद सुवन सौं बिथा हमारी ॥

(प) ३—आवैं जहँ तम पुन ।

(य) ,,—जब आइयतु तम गहन कुंज गहवर तरु छाँहीं ।
अप अप मुख चाँदने, चलीं सुन्दर बन माँहीं ॥

(रा०) ,,—अपने मुख चाँदने, चलति सुन्दर तिन माँहीं ॥

(य) ५—इहि बिधि बन, बन ढूँढि, बूझि उनमत की नाहीं ।
लगी करन मन हरन, लाल-लीला बन माहीं ॥

(च) ६—लीला मोहन लाल रसाल की इन ही सोहै ।

(ट) ७—ता मैं केवल भई, कछु न जानैं हम काहैं ॥

[१]हरि की सी सब चलनि, बिलोकनि, बोलनि, हेरनि।
[२]हरि की सी गैयन टेरनि, घेरनि, पट-फेरनि ॥२३॥❀

[३]हरि की सी बनि आवनि, गावनि अति-रस-रंगी।
हरि-सम कन्दुक रचनि, नचनि, नव-ललित-त्रिभंगी ॥२४॥

[४]स्रीदामा बनि भाम, चढ़ति कोऊ कान्हर-काँधें।
[५]कोउ जसुमति बनि कान्ह, दाम-गहि ऊखल-बाँधें ॥२५॥

पाठान्तर—

(ट) १—हरि की चलनि, बिलोकन, हरि की सी हेरनि।
(प) ,,—चलनि, बिलोकनि, हरि की सी त्यौं अबर-फेरनि।
हरि सी गौवन घेरनि, टेरनि, हरि की सी हेरनि॥
(त) २—त्यौं गायन चारन, घेरनि, मुख-टेरनि खेलनि॥
❀ उक्त पदावली से लेकर, "कोउ गिरिवर अबर की करि, धरि बोलति तव, निरखि इहि तर होहु गोप, गोपी, गोधन, सब।" ये पाँच—छंद, हमारी और (अ) (क) (य) तीन प्रतियों में नहीं हैं।
(च) ३—हरि सी बन तें आवनि, गायन सँग रस रंगी।
त्यौं हीं कन्दुक-रचनि, नचनि, गति सरस त्रिभंगी॥
(छ) ,,—हरि की सी बनि बनतें आवन, गावन रस रंगी।
हरि सी गैन्दुक रचन, नचन, पुनि हैंन त्रिभंगी॥
(ट) ४—कोऊ सिरीदाम हुभाम, चढ़ति कान्हर के काधें।
(प) ,,—कोउ सिरीदामा होइ ।
(त) ,,—कोउ दामा ह्वै भाम, चढ़ै कान्हर के काँधे।
(च) ५—जसुमति ह्वै कोउ कान्ह, दाम लै ऊखल बाँधें॥
(त) ,,—जसुमति बनि चलि बाल, लाल ऊखल सौं बाँधें॥

कोउ जमलार्जुन भजति, गजति-काली-बल कौ ।
कोउ कहै मूँदहु नैन, सोच नहिँ दावानल कौ ॥२६॥*

[1]कोउ गिरिवर अम्बर कौ कर-धर बोलति हैं तब ।
निधरक इहिँ तर रहौ, गोप, गोपी, गोधन सब ॥२७॥

[2]भृंगी-भै ते भृंग होइ, जब[3] कीट-महा-जड ।
[4]कृष्ण-प्रेम तैं कृष्ण होइ, [5]तब का अचरज-यड ॥२८॥

[6]तब पायौ पिय-पद-सरोज का रुचिर-खोज तहँ ।
[7]अरिदर, अकुस, कमल, कलस, [8]धुज, जगमगात जहँ ॥२९॥

पाठान्तर—

*उक्त पद्द 'राधाकृष्णदास जी सं० पुस्तक" नगरी प्रचारिणी वाली प्रति म नहीं हैं ।

(क) १—कोउ इक अम्बर कौ गिरिवर कर धर बोलत तब ।
मिहडर इहि तर रहौ, गोप, गोपी, गाइन सब ॥
(च) २—भृंगी भय ते भृंग होत, इकु कीट महा-जड़ ।
(क) ३—यह ।
(ग) ,,—ज्यौं ।
(ट) ४—कृष्ण प्रेम सौं कृष्ण होइ, यह नहिँ अचरज—यड़ ॥
(च) ५—कछु अचरज नहिँ यह ॥
(झ) ,,—कृष्ण भगति तै कृष्ण हौन, कछु नहिँ अचरज यह ॥
(य) ६—पायौ तब पिय पद सरोज कौ, रुचिर-खोज तहँ ।
(अ) ७—अरिदल अकुस कलस कमल अति जगमात जहँ ॥
(च) ,,—नय, गद, अकुस, कुलिस, कमल, धुज जगमात जहँ ॥
(ज) ८—छवि जगमगात जहँ ॥

[1]जो रज सिव, अज खोजत, जोजत जोगी-जन हिय ।
[2]सो रज वदन करन लगीं, सिर-धरन लगीं तिय ॥३०॥

[3]पुनि निरिखे ढिंग जगमगात, पिय-प्यारी के पग ।
[4]चितै परसपर चकित भई, जुरि चली तिहीँ मग ॥३१॥

[5]चकित भई सब कहति जात, बड-भागिन को अस ।
[6]परम-कांत एकात पाइ, पीवति अधरन-रस ॥३२॥*

पाठान्तर—

(अ) १—जो रज अज, सिव, कमला, [illegible]ढति जोगी जन हिय ।
(रा०) ,,—जो रज सिव, अज, कमला खोजत जोगी-जन हिय ।

(ट) २—सो रज वदन करति, धरति सिर बार-बार तिय ॥
(रा०) ,,—ते सब वदन करन लगीं, सिर धरन लगीं तिय ॥

(अ) ३—पुनि पेखे अति जगमगात, ढिँग प्यारी के पग ।
(च) ,,—तब देखे ढिँग जगमगात, प्यारी तिय के पग ।
(रा०) ,,—देखे ढिँग जगमगत, तहाँ प्यारी—तिय के पग ।

(अ) ४—चकित भई सब चितै, परसपर चलीं तिही मग ॥

(क) ५—चकित चितै सब कहै कौन यह बड़ भागिन अस ।
(छ) ,,—चकित भई सब कहति कौन यह बड भागिन-अस ।

(क) ६—परम कांत एकांत लाइ, पीवति जु अधर रस ॥
(छ) ,,—परम कंत एकांत पाय, पीवत जु अधर रस ॥

* उक्त पद (अ) और (प) दो प्रतियों में नहीं है ।

[1]आगैं चलि अविलाकी, इक नव-पल्लव-स्रेनी।
[2]जहँ पिय निज कर कुसुम, सुसुम लै गूँथी बैंनी ॥३३॥

[3]तहँ पायौ इक मंजु-मुकर, मनि-जटित निलोलै।
तिहिँ पूछति ब्रज-बाल, बिरह-बस[4] सोऊ न बोलै ॥३४॥

[5]तरक करैं आपुस मैं, कहाँ इहि क्यौं कर लीन्हौ ?।
[6]तिन मधि हिय की जानि, कोऊ यह उत्तर दीन्हौ ॥३५॥

पाठान्तर—

(ट) १—चलि आगैं अविलोकी, नव नव पल्लव सेनी।
(रा०) ,—आगैं चलि पुनि अवलोकी, नव पल्लव सैंनी।
जहँ पिय कुसुम, सुसुम हाथ लै गूँथी बेनी ॥
(रा०) २—जहँ पिय कुसुम, सुसुम ली सुकर गुही है बैंनी ॥
(त) ,—जहा कुसुम ले हाथ पिया, रचि गूथी बेनी ॥
(ट) ३—पायौ तब इक मुकर मञ्जु मनि जटित विलोलै।
पूछति तिहि ब्रज-बाल, बिरह सौं सोऊ न बोलै ॥
(ठ) ४—भरि ।
(च, ५—करति तरक आपस मैं, कहो कर यह क्यौं लीनों ?।
(रा०) ,—तक करत अपमाहिँ, अहो यह क्यौं कर लीन्ह्यौं ?।
(प) ,,—करैं तरक ब्रज बाल, अहो यह कर क्यौं लीनौं ?।
तिन मैं कोउ तिनके हित कौ, नहिँ उत्तर दीनौं ॥
(च) ६—तिन मैं कोउ तिनके हित की, जिन उत्तर दीनौं ॥
(क) ,,—तिन मधि तिन के हिय की, जानि इक उत्तर दीनौं ॥
(रा०) ,,—तिन मैं तिनके हिय की जानि, उन उत्तर दीन्ह्यौ ॥

[1]वैंनी-गूंथन-समै, छैल पाछैं वैठे जब ।
[2]सुन्दर-वदन विलोकन-सुख कौ अत भयौ तव ॥३६॥

[3]तातैं मजुल-मुकर, मुकर लै वाल दिखायौ ।
स्री मुख कौ प्रतिविंव सखी ! तव सनमुख आयौ ॥३७॥

[4]धन्न कहति भई ताहि, नाहिँ कछु मन मैं कोपीं ।
निरमतसर जे सत, तिननि चूरामनि–गोपीं ॥३८॥

[5]इन नींके आराधे, हरि-ईस्वर-वर जोई ।
[6]तातै अधर-सुधा-रस, निधरक पीवति सोई ॥३९॥

पाठान्तर—

(अ) १—गूथन बैंनी समैं, लाल, बैठे पाछैं जब ।
(च) ,,—पटियनु गूथनि समैं, लाल पाछै बैठे जब ।
(रा०) ,,—वेनी गूहन समय, छबीलौ पाछैं बैठौ जब ।
(च) २—वदन बिलोकत सुन्दर सुख कौ, भयौ अत तब ॥
(रा०) ,,—सुन्दर वदन विलोकनि, पिय के अन्तस भयौ तब ॥
(अ) ३—मजुल-मुकर मुकर लै, तातैं वाल दिखायौ ।
सखि ! श्रीमुख-प्रतिबिंब, तबै उन सनमुख आयौ ॥
(अ) ४—कहित धन्य भई ताहि कछु मन नाहिँन कोपीं ।
निरमतसर-सतन की हैं, चूरामनि-गोपीं ॥
(प) ५—नींकें उन आराधे, इस्वर वर हरि जोइ ।
निधरकि तातैं अधर-सुधा रस पीवति सोई ॥
(ट) ६—तातैं अधरामृत निधरकि, अति पीवति सोई ॥
(त) ,,—तातैं अधरामृत अति निधरकि, पीवति सोई ॥
(रा०) ,,—तातैं निधरक अधर-सुधारस, पीवत सोई ॥

सोऊ पुनि अभिमान-भरी, यौं कहनि लगी तिय ।
मो पै चल्यौ न जाइ, जहाँ तुम चलन चँहत पिय ॥४०॥

[1]पुनि आगै चलि तनिक-दूरि, देखी सोई ठाढ़ी ।
[2]जासौं सुन्दर-नंद-कुँवर-पिय, अति-रति बाढ़ी ॥४१॥

[3]गोरे-तन की जोति, छूटि छबि छाइ रही धर ।
[4]मानौं ठाढ़ी सुभग-कुँवरि, कंचन-अवनी पर ॥४२॥

[5]घन तैं बिछुरि बीजुरी, जनु मानिनि-तनु काछैं ।
किधौं चंद सौं रूसि, चन्द्रिका रहि गई पाछैं ॥४३॥

पाठान्तर—

(क) १—आगैं चलि पुनि नैकु-दूरि, देखी सोई ठाढ़ी ।
सुन्दर-नंद-कुँवर पिय की, जासौं रति बाढ़ी ॥

(ख) २—जासौं-नन्द-सुवन वर पिय की, अति-रति बाढ़ी ॥
(ग) ,,—जासौं सुन्दर-नंद-सुवन पी, अति रति बाढ़ी ॥

(अ) ३—तन-गोरे तैं ज्योति, छूटि छवि छाइ रही यौं ।
ठाढ़ी मानौं सुभग-कुँवरि, कंचन अवनी ज्यौं ॥

(प) ४—मानौं कुँवरि-सुभग ठाढ़ी, अवनी-कंचन ज्यौं ॥
(रा०) ,,—मानौं ठाढ़ी कुँअरि, सुभग-कंचन अवनी पर ॥

(प) ५—जनु घन तैं बिछुरी बिजुरी, मानिन-तनु-काछैं ।
(रा०) ,,—घन तै जनु बिछुरी-बिजुरी, मानिन-तनु काछैं ।
(ट) ,,—बिछुरि बीजुरी जनु घन तैं, नूतन-छवि काछैं ।

[1]नैननि तै जलधार, हार-धोवति धरि-धावति ।
भँवर उडाइ नहिँ सकति, वास बस मुख-ढिंग आवति ॥४४॥

कासि-कासि पिय-महाबाहु, यौं बदति अकेली ।
[2]महा-बिरह की धुनि सुनि, रोवत खग, मृग, बेली ॥४५॥

ता सुन्दरी की दसा, देखि कछु कहति न आवै ।
[3]बिरह-भरी-पूतरी होइ तौं, कछु छवि पावै ॥४६॥※

[4]धाइ भुजन भरि लई, सबन लै-लै उर लाई ।
मनौ महा-निधि खोइ, मध्य[5] आधी-निधि पाई ॥४७॥

पाठान्तर—

(अ) १—नैंननि के अज हार, हियौ, धोवति धरि धावति ।
(प) ,,—नैंननि तै जलधार, बहति अविरल अति धावति ।
भँवर उड़ाइ न सकति, बास बस जे ढिंग आवति ॥

(अ) २—बिरह भरी की धुनि, सुनि रोवति खग, द्रुम, बेली ॥

(च) ३—बिरह-भरी पुतरी जु होइ, त्यौं असि छवि पावैं ॥

※ उक्त पद (म्र) और (ट) प्रति में भी नहीं हैं । तथा राधाकृष्ण दासजी सपादित प्रति में भी नहीं हैं ।

(ट) ४—भुजन धाइ भरि लइ, सबनि उर लै ले लाई ।
(रा०) ,,—दौंरि भुजन भरि लइ, सबन लै लै उर लाई ।

(ह) ५—बीच ।
(रा०) ,,—मुख ।

[1]कोउ चुंबति मुख-कमल, कोऊ भ्रू, भाल, सु अलकैं।
जामें पिय-संगम के सुन्दर, स्रम-कन झलकैं ॥४८॥*
[2]पोंछति अपने अचल, रुचिर-दृगचल तिय[3] के।
[4]पीक-भरे सुकपोल, लोल-रद-छद जहँ पिय[5] के ॥४९॥†
[6]तिहि लै तहँ तें अहुरि-बहुरि, जमना-तट आईं।
[7]नँद-नंदन जग-बंदन पिय जहँ, लाड़-लड़ाईं ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम-स्कन्धे रास क्रीड़ाया 'गोपी विरहोप' वर्णनो नाम द्वितीयोऽध्याय ॥*

पाठान्तर—

(च) १ – चुंबति कोउ मुख-कमल, कोऊ जु सुधारति अलकैं।
(अ) ,,—चूमति कोऊ मुख कमल, कोऊ भ्रुव, भाल, सु अलकैं।
तामें सुन्दर स्याम की मंजुल-स्रम-कन झलकैं ॥
* उक्त पद्य (क) प्रति में नहीं है।
(च) २—अपने अचल, रुचिर-दृगंचल पोंछति तिय के।
(छ) ३—ती के।
(च) ४—पीक-भरे सु कपोल, लोल-रद नग-युत पिय के ॥
(छ) ५—पी के।
† इससे पूर्व का पद और उक्त पद (क) और (ट) प्रतियों में नहीं हैं।
(प) ६—लै तहँ तें तिहि अहो! बहुरि तट-जमना आइ।
(रा०) ,,—जित-तित तें सब अहुरि, बहुरि-जमुना तट आईं।
(प) ७—नँद-नंदन मन मोहन पिय, जहँ लाडि लड़ाईं ॥
(रा०) ,—जहँ नँद नंदन जग बंदन पिय, लाड़ लड़ाईं ॥
*मूल भागवत में उक्त अध्याय का "कृष्णान्वेषण" नाम लिखा है।

तृतीय-अध्याय

[1]कहनि लगीं अहो कुँवर-कान्ह ! प्रगटे व्रज जब तैं।
[2]अवधि-भूत-इन्दिरा-अलंकृत ह्वै रही तब तै ॥१॥

[3]अति सै-सुख-सरसावत, ससि ज्यौं बढत बिहारी।
पुनि-पुनि प्यारे ! गोप-बधू प्रिय निपट तिहारी ॥२॥*

[4]नैंन-मूँदिवौ महा अस्त्र लै हाँसी-फाँसी।
कित मारत हौ सुरतनाथ ! बिनु-मोल की दासी ॥३॥

पाठान्तर—

(य) १—लगीं कहनि यौं कान्ह कुँवर, ब्रज प्रगटे जब तैं।
(रा०) २—अवधि-भूत इन्दादि इहाँ क्रीडत है तब तैं॥

(य) ३—सब कौं सुख बरसावत, ससि ज्यौं बढति इढारी।
(रा०) ,,—सब कौं सब-सुख बरसत, सरसत बद-हितकारी।
तिन [illegible] पुनि प-गोप बधू पिय निवृट तिहारी॥

* उक्त पद (क) प्रति में नहीं है।

(ट) ४—महा-अस्त्र लै नेन मूंदिवौ, हाँसी की फाँसी।
मारत हौ क्यौं (कत) सुरतनाथ, बिनु-मोलहि दासी॥

निप तैं, जल ते, ब्याल-अनल तैं, दामिनि-भर तैं।
यौं राखीं ! नहिँ मरन दई ! नागर-नग-धर तैं ॥४॥

जनु जसुधा ते प्रगट भए, पिय ! अति इताराने।
स्व-कुसल-कारन बिधना, [3]बिनती-करि आने ॥५॥

अहो मित्र ! अहो प्रान-नाथ ! इहि अचरज-भारी।
पने जन कौं मारि, करहु का की रखवारी ॥६॥

व पसु-चारन चलत, चरन-कोमल-धरि वन मैं।
सिल, तृन, कटक अटकत, कसकत हमरे-मन मैं ॥७॥

ठान्तर—

(अ) १—बिष-जल तैं औ ब्याल अनल पुनि दामिनि झर त।
(रा०) ,,—बिष जल तैं, ब्याल तैं, अनल तैं, चपला-झर तैं।
राखीं क्यों ! मरन दइ नहिँ, नगधर-नागर तैं॥

(अ) २—जब तें जसुधा-सुवन भए, तब तैं इतराने।
(च) ,,—जु तुम जसुधा-सुत न भए पिय अति-इतराने॥
(न) ,,—जसुधा सुत जनु तुम न भए पिय बहु इतराने।
बिस्न कुसल के कारन, अहो बिनती करि आने॥

(च) ३—बिधि न बिनती कै आने॥

(रा०) ४—अहो मीत ! अहो प्राननाथ ! यह अचरज-भारी।
अपननि जौं मारि हौ, करि हौ काकी रखवारी॥

(रा०) ५—सिल तिन कटक, अटक, करक हमरे मन म॥

अजहूँ नाहिँन कछु बिगर्यौ, रचक पिय आवौ।
मुरली कौ जूठौ अधरामृत, आइ पियावौ ॥१६॥*

[1]फनी-फनन पै अरपे डरपे, नैंकु नाहिँ तब।
छतियनु पैं पग धरत, डरत कित कुँवर-कान्ह अब ॥१७॥

[2]जानति हैं हम, तुम जो डरत ब्रजराज–दुलारे।
कोमल-चरन-सरोज, उरोज कठोर हमारे ॥१८॥

[3]सनैं-मनैं पग धरिय, हमैं पिय निपट-पियारे।
[4]कित अटवी महँ अटत, गडत तृन कूर्प–अन्यारे ॥१९॥

पाठान्तर—

(क) १—फनी फनन पर डरपे अरपे, नाहिँन नैंकु तब
छुविलि छातिन पग धरत, डरत क्यौं कान्ह कुँवर अब

(च) २—जानत हैं हम कुँवर-कान्ह ! ब्रजराज दुलारे।
(छ) ,,—हम समुझीं यह तुम जु डरत-ब्रजराज-दुलारे।
(ञ) ३—सनैं सनैं धरिऐ पिय ! हमकौं अधिक पियारे।
(च) ,,—हरैं-हरैं पग धरिये, हमै पु अति हो पियारे।
(छ) ,,—हरैं-हरैं धरि पीय, हमहिँ तौ प्रान—पियारे।
(च) ४—कित अटनी में अटकत, अकुर-कक्र न्यारे॥
(प) ,,—कित अटवी महि अड्त, गड्त तृन कुस अनियारे॥
(ट) ,,—हा ! अटवी मैं अटत, गड्न तृन कुलिस अन्यारे॥
(त) ,,—कत अटवी महिँ अटत, गड्त तृन कूट ■ न्यारे॥

जदपि परम-सुख-धाम, स्याम-पिय कौ लीला-रस ।
तदपि तिनहिँ अवलोकन-बिनु, अकुलाइ गई अस ॥२०॥❀

ज्यौं चंदन, चंद्रमा, तपन त सीतल करही ।
पिय-बिरही जे लोग, तिनहिँ लगि आग बितरही ॥२१॥†

छिन बैठत, छिन उठत, सुलोटत अति रज माहीं ।
थोरे-जल ज्यौं दीन-मीन, आतुर अकुलाहीं ॥२२॥‡

इति श्रीमद्भागवते महा पुराणे दशमस्कन्धे रास क्रीडाया
"गोपिका गीत उपालम्भोभवरसानं नाम तृतीयोऽध्याय ।§

——:o——

❀ उक्त पद्य (क) प्रति और नागरी प्रचारिणी वाली प्रति म नहीं है ।

† उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नहीं है ।

‡ ' जदपि परम सुख धाम स्याम पिय कौ लीला रस ' से लेकर और उक्त छंद तक की पद्यावली छपी हुई प्रतियों मे (च) (प) (ट) में ही मिलती है, अन्यत्र नहीं । नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में भी नहीं है ।

§मूल भागवत में इस अध्याय का नाम "गोपी गीत" लिखा है और नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में "गोपिका गीत उपालम्भ-वर्णन ' नाम लिखा है ।

चतुर्थ अध्याय

[1]इहिँ विधि प्रेम-सुधा-निधि, बढ़ गई अधिक-कलोलैं।
[2]बिह्वल ह्वै गई बाल, लाल सौं अलबल-बोलैं ॥१॥

[3]तब तिनहीँ में प्रगट भए, नँद-नंदन-पिय यौं।
[4]दृष्टि-बंद करि दुरैं, बहुरि प्रगटैं नट-वर ज्यौं ॥२॥

[5]पीत-बसन-बनमाल धरैं, (लऐ) मंजुल-मुरली हथ।
मंद-मंद मुसिकात, निपट मनमथ के मन-मथ ॥३॥

पाठान्तर—

(क) १—बढ़ि गईं प्रेम सुधा निधि मैं कछु अधिक कलोलैं।
(ख) „—इहि विधि प्रेम सुधानिधि-मधि बढ़ि गईं अधिक कलोलैं।
(रा०) „—यह विधि प्रेम सुधा निधि में अति बढ़ी कलोल।
(ख) २—ह्वै गईं बिह्वल (विह्वल) बाल, लाल सौं अलबल बोलैं॥
(अ) ३—तिनही मैं तब प्रगट भए, नागर नगधर यौं।
(रा०) „—तब तिनहीं में, तैं निकसे नँद नंदन पिय यौं।
(अ) ४—बंद दृष्टि करि दुरे, बहुरि प्रगटै नटवर ज्यों॥
(रा०) „—दृष्टि बंद कै दुरें, बहुरि प्रगटे नटवर ज्यों॥
(रा०)५—पीत बसन बनमाल, धनी मंजुल मुरली हथ।
मँद मधुर तर हँसत, निपट मनमथ के मनमथ॥

[1]पियहिँ निरखि तिय-वृन्द, उठे सब चकु वेर यों ।
[2]फिरि आऐ घट मान, बहुरि जागति इन्द्री ज्यों ॥४॥

[3]महा-छुधित की भोजन त ज्यों प्रीति सुनी है ।
ताहू तैं सत-गुनी, सहस कैं कोटि-गुनी है ॥५॥

[4]दौरि लिपटि गई ललित-लाल, सुख कहत न आवै ।
मीन उछरि ज्यों पुलिन परे पै पानी पावै ॥६॥*

पाठान्तर—

(च) १—देखि पिया तिय वृन्द उठे, सब चकु येर या ।
(रा०) ,,—पियहिँ निरखि तिय वृन्द उठा सब इकै बार यों ।
(च) २—आये पुनि घट प्रान, बहुरि उभकति इन्द्री ज्यौं ॥
(रा०) ,,—परिघट आए प्रान, बहुरि उमकत इन्द्री ज्यौं ॥
(प) ३—भोजन सों ज्यौं महा छुधित की, प्रीति सुनी हैं ।
ताहू तें सत-गुनी, सहस कों कोटि—गुनी है ॥
(पा), —महा छुधित को जैसें असन सों प्रीति सुनी हैं ।
ताहूतें सतगुनी, सहस पुनि कोटि गुनी है ॥
(ख) ४—लिपटि गइ पुनि ललित-लाल, छवि कहनि न आवैं ।
मीन उछरि पुलिन परै, पुनि पानी पावै ॥

*यद्यपि उक्त छंद (आ) (प) (त) प्रतियों में ही मिलता है जैसा कि पहिले लिखा गया है, अत यहां हमे उद्धृत किय और कथानक का सिल सिला ठीक रहा था, इसलिये इसे उद्धृत करना पड़ा। नागरी प्रचारिणी द्वारा प्रकाशित प्रति में उक्त प पूर प न आग हैं और इसका पाठान्तर निम्न प्रकार है। यथा—

दौरि लपटि गई ललित पिय हिँ कहत न बनि आवहि ।
मीन उछरि जस परहिँ पुलहिँ पुनि पानी पावहि ॥

[1]कोऊ चटपट झपटि जाइ, उर-उर सौं लपटी।
[2]कोउ गर-लपटी कहति, भले जू कान्हर कपटी ॥७॥

[3]कोउ नागर-नगधर की गहि रही दोउ-कर पटकी।
ज्यौं नव-घन तै सटकि दामिनी, दॉमन अटकी ॥८॥

[4]कोऊ पिय-भुज लटकि, मटकि रही नारि-नवेली।
[5]जनु सुन्दर-सिंगार-विटप, लपटी छबि—वेली ॥९॥*

पाठान्तर—

(क) १—कोऊ चटपट मौं कर लपटी, कोऊ उरवर सौं लपटी।
(प) ,,—कोऊ करसौं लपटी धाइ, कोऊ उर सौं लपटी।

(रा०) ,,—कोउ चटपटि उर लपटी, कोउ करधर लपटी।
गर सौ कोऊ लपटी कहति, तुम कान्हर कपटी॥
(रा०) २—कोउ गरे लपटी कहति, भलैं-भलैं कान्हर कपटी॥

(ना प्र) ३—कोउ नगधर-वर पिय की, गहि-गहि परिकर पटकी।
जनु नव घन तें सटकि, दामिनी घटा सो अटकी।

(क) ४—कोउ पिय भुज सी मटकि, लटकि रही नारि नवेली।
(रा०) ,,—दोउ पिय-भुज लिपटाय, रही नव-नारि नवेली।

(क) ५—जनु लपटी सिंगार विटप, सुन्दर छबि वेली॥

* उक्त पद्य (अ) प्रति में नहीं है।

[१]कोउ कौमल पद-कमल, कुचन पै राखि रही यौं।
[२]परम-कृपन-धन-पाइ, हिऐ सो लाइ रहत ज्यौं(ज्यौं)॥१०॥*

[३]कोऊ पिय को रूप, नैन-मग उर-धरि ध्यावत।
[४]मधु-मॉखी ज्यौं देखि, दसो-दिसि अति-छवि पावत ॥११॥†

[५]कोउ दसनन दै अधर-बिंब, गोबिन्दहिँ ताडति।
[६]कोउ इक नैन-चकोर, चारु-मुख-चंद निहारति ॥१२॥‡

पाठान्तर—

(च) १—कोऊ पद कमल कुचन कौमल बिच राखि रही यों।
(रा०) ,,—कोउ कमल पग कमल कुचन बिच राखि रही यौं।

(च) २—निधन परम धन पाइ हिए सो लाइ रहति ज्यौं॥
*उक्त पद्य (क) प्रति में नहीं है।

(अ) ३—पिय को कोऊ रूप नैन भरि उरधरि आवत।
(रा०) ,,—कोउ पिय रूप नयन भरि उर मैं, धरि धरि धावति।
(अ) ४—मधुर, मिष्ट ज्यों दृष्टि दसौ दिसि अति छवि छावत॥
(रा०) ,,—मधु मॉखी लौं छोडि दुहूँ दिसि, अति छवि पावत॥
†उक्त पद्य (क) प्रति में नहीं है।

(अ) ५—दसन दाबि कोउ अधर बिम्ब, गोविंदहि ताडत।
(रा०) ,,—कोउ दसननि दबि अधर बिम्ब, गोविंदहिँ ताडत।

(अ) ६—करि कोऊ नैन चकोर लाल मुख चंद निहारति॥
(रा०) ,,—कोउ एक चारु चकोर चखनि मुख चन्द निहारति॥
‡उक्त पद्य (क) और (ट) प्रति म नहीं है।

[1]कहुँ काजर, कहुँ कुमकुम, कहुँ इक पीक-लीक वर।
अस राजत ब्रजराज-कुँवर, कन्दर्प-दर्प हर ॥१३॥

[2]बैठे सब पुनि पुलिन, परम-आनंद भयो है।
[3]उनिलिन अपनो छादन, छवि सौं छाद दयो है ॥१४॥

[4]एक-एक हरि-देव, सबन के आसन बैसे।
किए मनोरथ पूरन, जिनके उपजे जैसे ॥१५॥*

[5]ज्यों अनेक जोगेसुर, जिय में ध्यान धरत है।
एक बेर ही एक-रूप ह्वै, सुख वितरत है ॥१६॥†

पाठान्तर—

(रा०) १—कहुँ काजल, कहुँ कुमकुम, कहुँ कहुँ-पीक लाक वर।
तहँ राजत नँद नद कन्द, कन्दर्प दर्प हर॥

(क) २—बैठ जाइ पुलिन प, परम अनद भया है।
(ख) ,,—बैठे पुनि उहिँ पुलिन परम आनन्द भए हैं।
(रा०) ३—छपितो अपने छादन छवि सा बिछाइ दए ह॥
(अ) ४—एक एक हरिदेवा सबहिँ आसन पै बसे।
पूरन किए मनोरथ जाके उपजे जैसे॥

*उक्त पद राधाकृष्णदास संपादित प्रति में नहीं है।

(प) ५—जो अनेक जोगीश्वर, हिय म ध्यान धरत हैं।
एकहिँ बेर रूप इन सब कौं सुख वितरत हैं॥

†उक्त पद राधाकृष्णदास जी सपादित प्रति में नहीं है।

जोगी-जन बन जाइ, जतन करि कोटि-जनम पचि ।
[1]अति-निरमल करि राखत, हिय में आसन रचि-रचि ॥१७॥*
[2]तोऊ तहँ नहिं जात, नवल-नागर-सुन्दर-हरि ।
[3]ब्रज-जुवतिन के सो अवर बैठे अति-रुचि करि ॥१८॥†
[4]कोटि-कोटि ब्रह्मांड, जदपि एकहिं ठकुराई ।
पै ब्रज-देविन-सभा, साँवरे अति-छवि पाई ॥१९॥
[5]ज्यों नव-दल-मंडल में, कमल-करनिका भ्राजे ।
[6]त्यों सब सुन्दरि-सनमुख, सुन्दर-स्याम बिराजें ॥२०॥

पाठान्तर—

(रा०) १—अति निरमल करि-करि राखत रचि हिय रचि आसन रचि ।
*उक्त पद्य (च) प्रति में नहीं है ।

(च) २—कबु छिन हू नहिँ जात, तहा नागर सुन्दर हरि ।
(रा०) ,,—कबु छिनात तहँ जात नवल नागर मोहन हरि ।
(च) ३—ब्रज-जुवतिन के अवर बैठे सो अति रुचि करि ॥
(रा०) ,—ब्रज की तियन के अवर पर बैठे अति रुचि करि ॥
† "जोगी-जन बन जाइ, जतन करि कोटि जनम पचि' से लेकर "तौऊ तहँ नहिँ जात नवल नागर सुन्दर हरि' ये दोनों छन्द (क) (च) (प) तीन प्रतियों में नहीं हैं ।

(क) (ट) ४—कोट कोट ब्रह्मांड और इकली ठकुराई ।
ब्रज देविन की सभा, सामरे अति छवि पाइ ॥
(च) ५—सब सुन्दरि के सन्मुख, यों अति स्याम बिराजें ।
ज्यों मंडल नव दल में, कमल करनका भ्राजे ॥
(रा) ,,—ज्यों नव दलनि कमल मंडलहिँ कर्णिका भ्राजे ।
(रा०) ६—त्यों सब गोपिन सन्मुख, सुन्दर स्याम बिराजें ॥

[१]बूझनि लागीं नवल-बाल, नँदलाल-पियहिं तब ।
प्रीति-रीति की बात, मनहिं मुसिकाति जाति सब ॥२१॥

गोपी प्रश्न

[२]इक भज ते कौं भजै, एक बिनु-भजते भज हीं ।
[३]कहौ कृष्ण ! वे कौंन आहिं, जो दोउन तज हीं ॥२२॥

कवि कथन

[४]जदपि जगत-गुरु नागर, नगधर, नंद-दुलारे ।
[५]ते गोपिन के प्रेम-बिवस, अपनेइ-मुख हारे ॥२३॥

पाठान्तर—

(क) १—पूछनि लगीं नवल बाल, नँदलाल पिया तब ।
(रा०) ,,—बूझनि लगि ब्रज जुवति जुगति की जुगति पियहिं तब ॥
(च) २—इक भजते कों भजै, भजै बिनु एकु जु भजहीं ।
(रा०) ,,—इक भजतनिकों भजैं, एक अन भजतनि भजहीं ।
(च) ३—कह हु ! कहो ते कवन अहैं जे दोऊ तजहीं ॥
(रा०) ,,—कहो कान्ह ते कवन आहिं, जे दुहुअनि तजहीं ॥
(रा०) ४—जद्यपि जगत गुरु नागर, जसुमति नन्द दुलारे ।
(प) ५—तदपि गोपियन प्रेम बिवस, अपने मुख हारे ॥
(च) ,,—गोपिन के ह्वै प्रेम, बिवसि, मुख अपने हारे ॥
(रा०) ,,—पै गुपियन के प्रेम बस, अपने मुख हारे ॥

भगवान का उत्तर

[१]तब बोले ब्रजराज-कुँवर, हौं रिनी तिहारौ।
अपने-मन तें दूरी करौ, किनि दोष हमारौ ॥२४॥

[२]कोटि-कल्प लगि तुम प्रति, हौं उपकार करौं जो।
हे मनहरनी-तरुनी! उरिनी नाहिँ होउँ तौ ॥२५॥

सकल-विस्व अप-बस करि, मो-माया सोहति है।
[३]प्रेम-मई तुम्हरी माया, मो-मन मोहति है ॥२६॥*

पाठान्तर—

(प) १—बोले तब ब्रजराज राज हौं ऋनी तिहारा।
मन अपने तें करो दूरि सब दोष हमारी ॥

(रा०) ,,—तब बोले पिय नव किशोर हम ऋनी तिहारे।
अपने हिय तें दूरि करा सब दोष हमारे ॥

(प्र) २—कलप कोटि लौं हौं तुम प्रति प्रति उपकार करौं जो।
हे तुरनी मनहरनी उरिनी हौंउँ नाहिँ तौ ॥

(रा०) ,,—कोटि कलप लगि तुम प्रति प्रति उपकार करौं जौ।
हे मनहरनी, तरनी, उऋन न होउँ तथा तौ ॥

(रा०) ३—मोह मइ तुम्हरी माया सोइ, मोहि मोहति है ॥

[1]तुम जु करी सो कोउ न करै, सुनि नवल-किसोरी ! ।
[2]लोक-वेद की सुदृढ़-सृ खला, तृन-सम तोरी ।।२७।।

इति श्री मद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे रास क्रीडायां गोपी विरह तापोपशमनोनाम चतुर्थोऽध्याय. ।*



पाठान्तर—

(क) १—तुम जो करी सो न करे कोऊ अहो नवल किसोरी !
(रा०) ,,—तुम जुकरी सो कोउ न करी हे नवल किसोरी ! ।
(फ) २—लोक, बेद की सुदृढ़-साँकरी, तृन ज्यौं तोरी ॥

* श्रीमद्भागवत में उक्त अध्याय का नाम "गोपी सान्त्विनम्" लिखा है ।

पंचम अध्याय

[1]पिय के सुनि रस-बचन, काज सब छाँड़ि दयौ है ।
[2]बिहँसि-बिहँसि निज-कंठन, लाल लगाइ लयौ है ॥ १ ॥
[3]कोटि-कलप लगि बसत, लसत पद-पंकज छाँहीं ।
कामधेन पुनि कोटि-कोटि, बिलुठति रज-माँहीं ॥२॥*
[4]सो पिय भए अनुकूल, तूल कोउ नाहिं रह्यौ तब ।
[5]त्रिविधि-सुखन कौ मूल, सूल उनमूल किए सब ॥ ३ ॥

पाठान्तर—

(अ) १—सुनि पिय के रस बचन, सकल रिपि छाँड़ि दया है ।
(रा०) ,,—सुनि प्रिय के रस बचन, सजनि गसि छाँड़ि दए हैं ।
(अ) २—बिहँसति अपने कठन, लाल लगाय लया है ॥
(रा०) ,,—बिहँसि आपने उर मा, लाल लगाइ लए हैं ॥
(अ) ३—कलप कोट लौं बसति, लसति पंकज पद छाहीं ।
(रा०) ,,—कोटि कलपतरु लसत, बसत पद पंकज छाहीं ।
(प) ,,—कोटि कल्पतरु बसैं, लसैं पद पंकज छाहें ।
कोटि कोटि पुनि कामधनु, बिलुलित रज माँहि ॥

* उक्त पद्य नागरी प्रचारिणी सभा वाली प्रति में नहीं है ।

(प) ४—भए पिया अनुकूल, तूल कोउ नाहिं भयो अब ।
(रा०) ,,—वै पिय भए अनुकूल, तूल कोऊ न भयो अब ।
(प) ५—निरविधि सुख कौ मूल, सूल निरमूल करे सब ॥
(रा०) ,,—निरवधि सुख के मूल, सूल उनमूल कर्‌यो सब ॥
(प) ,,—निरविध सुख के मूल, मूल अनमूल किए सब ॥

[1]फिरि आए तिहिं सुर-तरु-तर, सुन्दर गिरिवर-धर।
आरंभौ अद्भुत-सुरास, उहिं कमल-चक्र पर ॥ ४ ॥

[2]एक-काल ब्रज-बाल-लाल, तहँ चढे जोरि-कर।
[3]नैकु न इत-उत होत, सबै निरतति विचित्र-नर ॥ ५ ॥

[4]मनु दरपन सम अवनि, रवनि तापैं छवि दैंईं।
[5]विलुलित कुंडल-अलक, तिलक झुकि झाँई लैंईं ॥ ६ ॥*

पाठान्तर—

(प) १—तब वा रासहि तेहि सुर तरु तर, सुन्दर गिरिधर।
(च) ,,—आए पुनि तहँ सुन्दर तरु-वर, पिय गिरिधर वर।
(रा०) ,,—फिर आए तिहि सुरतरु तर मोहन गिरिवर—धर।
आरम्भित अद्भुत सुरास, उहि कमल चक्रपर ॥

(रा०) २—एक बार ब्रजबाल लाल, सब चढे जोर-कर।
(ट) ३—नमित न इत उत होंइ, सबै निरतैं विचित्र-वर ॥
(रा०) ,,—नव तन इत उत होत, सबै निर्तत विचित्र वर ॥

(अ) ४—मनि, दरपन से अवनि, रवनि ता पर छवि दैंहीं।
(च) ,,—पुनि दरपन सम अवनी, रवनी अति छवि दैंहीं।
(रा०) ,,—मनि दर्पन सम अवनि, रमनि तापर छवि दैंहीं।
विलुलैं-कुंडन, अलकैं, तिलक झुकि झाँकी लैंहीं
(रा०) ५—विधुरित कुण्डल, अलक, तिलक झूकि झाँई लेहीं ॥

*उक्त पद (क') (प) (ट) तीन प्रतियों में नहीं है।

[१]कमल-करनिका मध्य, जु स्यामा-स्याम बनीं छवि ।
[२]द्वै-द्वै गोपिन-बीच, यौं मौहन लाल रहे फबि ॥ ७ ॥

[३]मूरत एक अनेक देखि, सोभा अदभुत अस ।
[४]मंजु-मुकुर-मंडल मधि बहु-प्रतिबिंब होइ जस ॥ ८ ॥❀

रतनावलि-मधि नील-मनी, अदभुत झलकै जस ।
[५]सकल-तियन के संग, साँवरा-पिय सोभित अस ॥ ९ ॥†

पाठान्तर—

(ङ) १—कमल—करणिका मध्य, स्याम स्यामाजु बनीं छवि ।
(रा०) २—द्वै द्वै गोपियन बिच पुनि मण्डल माँहि लसे फबि ॥
(प०) ३—मूरति एक अनेक जगत, अद्भुत—सोभा अस ।
(रा०) ४—अमिमल दरपन मण्डल माहिँ बिधु आनि परत जस ॥
(प) ,,—मंजु मुकुर मंडल मधि, बिधु छबि आनि परति जस ॥
❀उक्त पद्य (क) प्रति में नहीं है ।
(अ) ५—सकल त्रियन के संग, साँवरी पिय सोभै अस ।
रतनावलि मधि नील मनी, झलकै अद्भुत जस ॥
अथवा—
(रा०)—सकल तियन के मध्य सांवरो पिय सोभित अस ॥

† कमल करनिका मध्य जु स्यामा स्याम बना छवि" से लेकर उक्त छंद तक (क) प्रति में नहीं है जो कि उचित प्रतीत होता है क्योंकि इससे कथानक का सिलसिला तो बिगड़ता ही है साथ ही पुनरुक्ति दोष भी भासित होता है और शब्दावली भी विचारणीय है । उक्त छंद हासिये पर किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा पीछे से लिखा मालूम होता है । हाँ छापे की सभी प्रतियों में (उक्त छंद) अवश्य मौजूद है सिर्फ मथुरा की लेथो की छपी को छोड़कर, अतः लाचार होकर हमें भी इनको लिखना पड़ा ।

[1]चपल-तियन के पाछे, आछे विलुलित-बैंनी।
[2]चचल-रूप-लतनि-सँग डोलति ज्यों अलि-सैनी ॥ १५ ॥*

मोहन-पिय की मलकन, ढलकन मोर-मुकट की।
सदाँ बसौ मन मेर, फरकन पियरे-पट की ॥ १६ ॥

[3]कमल-वदन पै अलक छुटीं, कछु स्रम-कन झलकनि।
सदाँ रहौ मन मेरे, मोर-मुकट की ढलकनि ॥ १७ ॥†

पाठान्तर—

(थ) १—छबिलि तियन के आछैं पाछैं बिलुलित-बैनी।
चचल रूप लतानि सग डोललि अति सैंनी ॥
(त) २—चचल रूप लतनि सँग, डोलत जनु अलि सैनी ॥

*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में उनमठ नवर पर है।

(प) ३—वदन कमल पै छुरित अलक, स्रम कन कछु झलकनि।
(रा०) ,,—कमल वदन पर अलकनि कहुँ कहुँ स्रम कन झलकनि।
सदाँ बसो मन मेरे, मजु मुकुट की लटकनि ॥

†उक्त पद्य (ह) प्रति में नहीं है और सब में मौजूद है पर "पुनिरुक्ति" का यहाँ भी दोष वर्तमान है, जो कि हमारी समझ में नहीं आता। नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में उक्त पद प्रथम पद से आगे है।

[1]कोऊ सखि कर-पकर, जु निरतति या छबि सों तिय ।
मानौं करतल फिरति देखि, नट-लट्टू होत जिय ॥१८॥*

[2]कोउ नाइक के भेद-भाव, लावन्य-रूप-रस ।
[3]अभिनै करि दिरसावति अरु गावति पिय के जस ॥१९॥†

पाठान्तर—

(अ)—कोऊ सखी [1] कर पकरत निरतत यौं छबीली तिय ।
(च) ,,—सखी [1] कोऊ कर पकरें, निरतति या छबि सौं तिय ।
(ट) ,,—कोउ कर पकरै निरतत, छबि सौं अति प्रिय तिय ।
फरतल फिरत देखि मानौं नट लट्टू होति पिय ॥
(प) ,,—कोऊ कर प अरप तिरप निरतत छबीली तिय ।
मानौं करतल फिरत देखि, अति लट्टू होत पिय ॥
(र०) ,,—कोऊ तहाँ कर बाँधि,नृत्य जब करन लगी तिय ।
मनु करतल नट फिरत देखिकैं लट्टू होत पिय ॥
(ह) ,,—कोउ सखि [1] कर पर तिरप बाधि निरतत नागर तिय ।
मानौं करन लट्टू फिरत, लखि लट्टू होत पिय ॥

* उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में तेंतीस नंबर पर है ।

(ट) २—नाइक सों करि भेद भाव, लावन्य-रूप मय ।
करि अभिनै दिरसावति, गावति गुन पिय के जय ॥
(श) ,,—कोउ नायक के भेद भाव लावन्य, रूप मय ।
अभिनय करि दिरसावति गावति गुन पिय के जय ॥
(क) ३—दिरसावति अभिनय करि, गुन-गावति पिय के जस ॥

† यहाँ से क्रम, नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में सब प्रतियों के समान है ।

[१]तव नागर-नँदलाल, चाँहिं कैं चकित होत यौं।
[२]निज-प्रतिबिंब-बिलास-निरखि,सिसु भूलि परत ज्यौं ॥२०॥

[३]रीझि परसपर वारित, अजर, अभरन अँग के।
[४]जहँ के तहँ बनि रहत, सकल अद्भुत-रँग-रँग के ॥२१॥

पाठान्तर—

(अ) १—नव नागर नँदलाल, चाँहिं चित चकित होति यौं।
निज प्रतिबिंब निरखि भूलै, अटपटो-सिसु ज्यौं॥

(रा०) ,,—तब नागर नँदनंद निपट हीं, होत बिबस भ्रम।
निज प्रतिबिंब बिलास, निरखि सिसु भूल रहत जस॥

(प) २—निज प्रतिबिंब बिलासनि निरखैं, सिसु भूलि रहति जौं॥

(च) ३—वारति रीझि परसपर, अभरन सब अँग अंग के।

(ट) ,,—रीझि परसपर वारि देत, अमर अँग अँग के।
अमर तहीं बनि रहति सबै, अद्भुत रँग रँग के॥

(ना०) ,,—रीझि परसपर वारत, अम्बर भूषन अँग के।
और तबहिं बनि रहत,तहाँ अद्भुत रँग रँग के॥

(च) ४—छिन औरे बनि रहति, आभरन नाना रँग के॥

(प) ,,—अंबर तिहि छिन बनति, तहाँ अद्भुत-रँग रँग के॥

[1]कोउ मुरली-सुर-जुरलि, रँगोली रस हि‍ँ बढावति।
कोउ मुरली की छेकि, छबीली अद्भुत-गावति ॥२२॥*

[2]ताहि साँवरो-छैल, रीझि हँसि लेति भुजन-भरि।
[3]चुंबन करि सुख-सदन, बदन ते दै तँबोल ढरि॥२३॥ †

पाठान्तर—

(प) १—कोऊ मुरली सा जुरली, रसीली रस हि‍ँ बढावति।
(र०) ,,—कोव मुरली सँग जुरली, अद्भुत रसहि बढावति।
(च) ,,—कोउ मुरली-सुर लएँ, रँगीली रँगहि बढावति।
(य) ,,—कोउ मुरला रसमली, रसीली रसहि बढावति।

(रा०) ,—कोउ मुरली सँग रली (मिली) अली अति रगहि बढावत।
सुघर पिया सँग गावति, सुन्दरि अति छवि पावत॥

* उक्त पद से आगे नागरी प्रचारिणी वाली प्रति म पुनः श्रृंखला में गड़बड़ है।

(क) २—तबै साँवरो कुँवर, रीझि लै लेति भुजन भरि।
(रा०) ,,—ताहि साँवरो कुँवर, रीझि, हँसि लेति भुजन भरि।

(क) ३—करि चुंबन सुख सदन, बदन तैं दति तोल ढरि॥

† उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में दो पद के अनन्तर अर्थात् नम्बर चालीस पर है।

[1]जग में जे संगीत-रीति, सुर-नर रीझति जिहिं ।
[2]सो ब्रज-तिय के सहज-गान, आगम गावत तिहिं ॥२४॥

[3]राग-रागिनो-मम जिनकौ, वोलिवो सुहायौ ।
सो किन पै कहि आवै, जो ब्रज-देविन गायौ ॥२५॥ *

[4]जो ब्रज-देवी निरतति, मडल-रास महा-छवि ।
[5]सो रस कैसे वरनि सकै, ऐसौ है को कवि ॥२६॥ *

पाठान्तर—

(अ) १—जे जग में सगीत-गीत, सुर मुनि रीझैं जिहि ।
(प) ,,—जो जग हैं, सगीत, निरत, सुर, नर रीझतु जिहि ।
ब्रज तिय कै सो सहज, निगम गावत आगम तिहि ॥
(स) २—सो ब्रज तियनि के सहज गमन, गावति आगम तिहि ॥
(रा०) ,,—जग मै जो सङ्गीत रीत, सुर मुनि रीझत जिहि ।
सो ब्रज तियन कों सहज, गवन अद्भुत गावत तिहि ॥
(च) ३—राग रागिनी सौ, जिनि कौ बोलवा सुहायौ ।
फापैं सो कहि आवे, ब्रज देविनि जो गायौ ॥
(रा०) ,,—राग रागिनी समुझन की, बोलिवो सुहायौ ।
सो कैसे कहि आवै, जो ब्रज देविन गायौ ॥
*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में तेतालीस नबर पर है ।
(च) ४—ब्रज देवी अरु निरतत, मडल करि जु महा-छवि ।
सो रस कैसे वरनि सकै, जग ऐसौ को कवि ॥
(रा०) ५—सो रस कैसे बरनि सकै, इहँ ऐसौ को कवि ॥
† उक्त पद (क) (प) दो प्रतियों में नहीं है और छापे की प्रतियों में उक्त पद, पूर्व पद के आगे है ।

[1]ग्रीव ग्रीव भुज मेलि, केलि-कमनीय बढ़ी अति ।
[2]लटकि-लटकि फिरि-निरतति, कापै कहि आवति गति ॥२७॥

[3]छबि सों निरतनि, लटकनि, मटकनि मडल-डोलनि ।
कोटि-अमृत-सम मुसिकनि, मजुल ता-थेई-बोलनि ॥२८॥

[4]कोउ गावत सुर-लै-सौं, लै करि तान नई-नई ।
सब-सगीतन छेकि, सु-सुन्दरि गान करत भई ॥२९॥*

पाठान्तर—

(द) १—पिय-ग्रीवा कर मेलि, केलि कमनीय बढ़ी अति ।
निरतत लटकि लटकि कैं, कापै कहि आवै गति ॥
(रा०) २—लटकि लटकि निरतति पिय सों, मनमथ मन्थन गति ॥
(अ) ३—निरतत छबि सौं लटकत मटकत मडल डोलत ।
कोटि अमृत मुसकन मजुल, ता थेइ थेइ बोलत ॥
(रा०) ,—कबहुँ परस्पर निर्तति लटकनि मण्डल डोलनि ।
कोटि अमृत सम मुसकनि मञ्जुल तत थेइ बोलनि ॥
(प ४—कोउ उत तें अति गावति, सुर लय तान नइ नई ।
(य) ,,—कोउ उघत उत गावति, सुलफ नै तान नइ-नइ ॥
सगीतनु सब छेकें सुन्दरि गान करनि भइ ॥
(रा०) ,,—कोउ तिनहूँ तैं अधिक अभिमित, सुर जुन गति भइ ।
सब कौं छकि छबीली, अद्भुत गान करत भइ ॥
(ह) ,,—कोउ उनतैं अति गावत, सुर लय लेत तान नइ ।
सब सङ्गीत छकैं, जु सुन्दरी गान करत भइ ॥

*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर अड़तीस पर है ।

[1]अप-अपनी गति-भेद, सवै निरतनि लागीं जव ।
[2]मोहे गँधरव ता-छिन, सुन्दरि-गान कियौ तव ॥३०॥*

[3]भुज-दडन सौं मिली मडली निरतति अति-छवि ।
[4]कुंडल कच सौं उरझे, मुरझे, तहँ वइरे-कवि ॥३१॥†

पाठान्तर—

(अ) १—अपनी निज गति भेदन सौं निरतन लागीं तव ।
(रा०) ,,—अपन अपनी जत गती भेद नर्तन लागनि जब ।
(ह) ,,—अप,अपनी जाति भेद तहँ नृतंन लगीं सब ।
(,,) २—गँधरब मोहे ततछिनु, सब मिलि गान कियौ जब ॥
(क) ,,—तिहि छिनु मोहैं गँधरब, सुन्दर-गान करत जब ॥
(रा०) ,,—अलि गँधर्व नृप से सब सुन्दर गान करत तव ॥
(ह) ,,—गध्रब मोहे ता छिन, सुन्दरि गान करत जब ॥

*उक्त पद नागरि प्रचारिणी वाली प्रतिमें नम्बर सत्ताइस पर है ।

(अ) ३—भुज दडन सौं मिलति ललित मडल निरतति-छवि ।
(रा०) ,,—गयडन सौं मिलि ललित गयड मयडल मंयडत छवि ।
(ह) ,,—भुज दयडनि सौं मिलति ललित मयडल निर्तंत छवि ।
(व) ४—कच कुंडल सौं उरभे, सुरभे नाहिं धइरे कवि ॥
(म) ,,—कुयडल सौं कच उरभे मुरभे जहँ थइरे कवि ॥
(य) ,,—कुयडल कचसौं उरझि सुरझि नहिँ वरनि सकै कवि ॥

† उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति नम्बर पैंतालीस पर है ।

[1]पियहि मुकुट की लटकनि, मटकनि, मुरली-रव अस ।
[2]कुहुँकु-कुहुँकु जनु नाँचत, मंजुल-मोर भरे-रस ॥३२॥*

[3]सिर तें सुमन सुदेस, जु बरसत अति-आँनद-भरि ।
[4]जनु पद-गति पें रीझि,अलक,पूँजति फूलन करि ॥३३॥†

पाठान्तर—

(प) १—पिया मुकुट की मटकन लटकन, मुरली रव अस ।
(ट) ,,—पिय के मुकुट की लटकनि मुरली नौन भरी अस ।
(२१०) ,,—पिय के मुकुट की लटकनि मटकनि मुरली रव अस ।

(ट) २—नाँचति कुहकि-कुहकि ज्यों मंजुल मोर सोर जस ॥
(,,) ,,—कुहकि कुहकि मनौं (पै) नाचत मंजुल मोर भर्‌यौं रस ॥
(ह) ,,—कुहुकि कुहकि पै बरसति मंजुल मोर भर्‌यो अस ॥

*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रतिमें नम्बर छब्बीस पर है ।

(प) ३—सीसहिं कुसुमन बरखत, सुन्दर आनंद अति भरि ।
मनु पद गति पर रीझि, अलक पूँजैं फूलन भरि ॥
(२१०) ,,—सिरतें कुसुम जु सुन्दर बरसत अति आनन्द भरि ।
(ह) ,,—सीँचत सुमन सुबेसन बरसत अति आंद भरि ।

(,,) ४—जनु पद गति पर रीझि, अलक पूजति पुन्पनि करि ॥

†उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर सत्तैस पर है ।

[1]स्रम-जल सुन्दर-बिंदु, रग-भरि अति-छवि-बरसत ।
[2]प्रेम-भक्ति-बिरवा जिनके, तिन के हिय-सरसत ॥३४॥*

[3]वृन्दावन कौ त्रिविधि-पवन, बिँजना जु विलोलै ।
[4]जहँ-जहँ स्रमित विलोकै, तहँ-तहँ रस-भरि डोलै ॥३५॥†

पाठान्तर—

(क) १—सुन्दर स्रम जल-बिन्दु भरे रँग अति छवि बरसत ।
जिनके बिरवा प्रेम भक्ति, उनके उर सरसत ॥

(रा०) ,,—श्रम भरि सुन्दर बुन्द रङ्ग भरि,कहुँ कहुँ बरसत ।
प्रेम भजत जिनके जिय तिनके हिय अति सरसत ॥

(ह) ,,—स्रम जल बिन्दुक सुन्दर रंग भरि कहु कहु बरसत ।
प्रेम भक्ति बिरवा जिनके तिनके हिय अति सरसत ॥

*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नंबर पचीस पर है ।

(क) ३—श्री वृन्दावन पवन त्रिविधि, बिजना जु बिलोलत ।
जहँ जहँ स्रमित विलोकत, तहँ-तहँ रस भरि डोलत ॥

(रा०) ,,—वृन्दावन कौं त्रिगुन पान, सो (सुख) बिजन बिलोलै ।
जहँ-जहँ श्रमित विलोके, तहँ तहँ रँग (रस) भर्यौ डोलै ॥

†उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर अठारह पर है ।

[1]उडत अरुन-अति बसन, सु-मडल मडित ऐसै ।
[2]मनो सघन-अनुराग-घटा-घन-घुँमडत जैसे ॥३६॥*
[3]ता-घूँधरि के मध्य, मत्त-अलि भरमत ऐसै ।
[4]प्रेम-जाल के गोलक, रुचि-छवि उपजत जैसै ॥३७॥
[5]कुसुम-धूरि-धूँधरी कुंज, मधुकरनि-पुंज जहँ ।
[6]हुलसत रस-आवेस, लटकि कीन्हो प्रवेस तहँ ॥३८॥ †

पाठान्तर—

(र०) १—अरुन उड़त तन बसन, सु मंडित मंडल ऐसै ।
(रा०) ,,—उड़ै अरुन पट बास राम मण्डल मण्डत अस ।
(ह) ,—उड़गन अरुन अबीरन अतुल मसि मण्डल ऐसी ।
(क) २—सघन घटा अनुराग मनौं, घुमड़त घन जैसे ॥
(छ) ,,—मनौं सघन अनुराग घटा उमड़त घुमड़त रस ॥
(रा०) ,,—मनहुँ सघन अनुराग घटा घन घुमड़त जैसी ॥
*उक्त पद नागरी प्रचारणी वाली प्रति में नम्बर तेइस पर है ।
(ट) ३—ताकी धूँधरि मत्त, मधुप बर भ्रमत सु ऐसे ।
(रा०) ,,—ताकी धूँमरि मत मधुप घन भ्रमत सु ऐसे ।
(,,) ४—प्रेम जाल के गोल कछुक छबि उपजत जैसे ॥
(अ) ५—कुसुम धूधरी कुंज, मत्त मधुकरन पुंज जहँ ।
(च) ,,—कुसुमन धूधरि कुञ्ज, भक्त मधुकर निवेस जहँ ।
(रा०) ,,—कुसुम धूरि धूँधरे-कुंज, मधुकरन पुञ्ज जहँ ।
हैं परि रस आवेस लटकि कीन्हौं प्रवेस तहँ ॥
(प) ६—ऐसे हुलसत प्रीवन प्रीवन, लटकि बेस तहँ ॥
(फ) ,,—ऐसे हुलसै थाचत प्रीधन लटकि केस जहँ ॥
(भ) ,,—एसें ही रस अलस लटकि कीनौं प्रवेश तहँ ॥
†उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति म नंबर उनतालीस पर है ।

[1]नव-पल्लव की सैंनी, अति-सुख-दैंनी सरसैं।
[2]सुन्दर-सुमन-सु निरखें, अति-आँनद हिय वरसैं ॥३९॥

[3]विहरति रति-अविरुद्ध-सुद्ध, सुर्त्त रस—सागर।
[4]उज्जल-प्रेम-उजागर, नागर सब-गुन-आगर ॥४०॥*

हार, हार में उरझि, उरझि बँहियाँ में बँहियाँ।
नील-पीत-पट उरझि, उरझि बेसर-नथ-मँहियाँ ॥४१॥†

[5]स्रमित सु-सुन्दर-अंग-सरस-अति चलत ललित-गति।
अंसन पैं भुज दए, लटकि-सोभा सोभित—अति ॥४२॥

पठान्तर—

(क) १—नव पल्लव दल सैंनी, सुख-दैंनी अति दरसै।
सुन्दर-सुमननि बरसत, लखि आँनद हिय बरसै ॥

(ह) ,,—नव पल्लव की सैनी अति सुख दैनी तिहिँ तर, (सिरसै)।
(,,) २—निरखें सुन्दर सुमन, सु आँनद हिय बरसै ॥

(भ) ,,—तापर सुमन उसेसी, मधुर निरेसी तिहि पर ॥

(रा०) ३—बिलसति अति रति सुद्ध, रुद्ध सौं रस-रस-सागर।

(ह) ,,—विहँसति रति अति सुद्ध, रुद्ध सौं रस रस सागर।

(रा०) ४—उज्जल प्रेम उजागर, सब गुन आगर-नागर ॥

*उक्त पद नागरी प्रचारणी वाली प्रति में नम्बर बावन पर है।

(अ) ५—स्रम भरे सुन्दर अंग, सरस अतिमिलत ललित-गति।

(य) ,,—स्रम भरे सुन्दर अंग परसि, अति मिलत-ललित गति।

(रा०),,—स्रम भरि सुन्दर अंग, रास रस-ललित-चलित गति।
अंसनि पर भुजवर दीनें सोभित सोभा अति ॥

† उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर सत्तावन पर है।

[1]टूटि जु मुक्ता-माल, छूटि रही सुन्दर उर पर।
[2]गिरि तैं जिमि सुरसरी, गिरी द्वै-धार अरि-धर ॥४३॥*

[3]अदभुत-रस रह्यौ रास, गीति-धुनि सुनि मोहे मुनि।
[4]सिला सलिल ह्वै गई, सलिल ह्वै गयौ सिला पुनि ॥४४॥†

पवन-थक्यौ, ससि-थक्यौ, थक्यौ उडु-मंडल सगरौ।
[5]पाछे रवि-रथ थक्यो, चल्यौ नहिं आगे डगरौ ॥४५॥‡

पाठान्तर—

(अ) १—टूटी मुक्ता माल, छूटि रही प्यारे उर पर।
(प) ,,—टूटी मुक्तन माल, रही छुटि साँवल उर पर।
(ह) ,,—टूटि मुक्तनि की माल, छूटि रहि साँवर उर पर।
मानौं गिरितैं गिरी, सुरसरी धार दुविधि धर ॥
(क) २—मानों गिरि तर धँसी, सुरसरी धार द्वै विधि धर ॥
(फ) ,,—जनु सिखर पहार त सुरसरि धाइ धँसी धर ॥
(स) ,,—मनु गिरि तैं सुरसरी, जु द्वै विधि गिरी धाइ धर ॥

*उक्त पद नागरी प्रचारणी वाली प्रति में नम्बर साठ पर है।

(प) ३—अद्भुत रस रह्यौ फैलि, गीति धुनि सुनि मुनि मोहै।
(ग) ४—सिला सलिल ह्वै रहीं, सलिल ह्वै मिला [illegible] सोहै ॥
(य) ,,—सलिल सिला ह्वै चली, सलिल ह्वै रह्यौ सिला पुनि ॥

† उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर उन्तालीस पर है।

(क) ५—ध्यान थक्यौ, बुध थक्यौ, चला नाहिँ पावै डगरौ ॥

‡ उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर सोलह पर है।

[1]मंजुल-अंजुल भरि-भरि, पिय पैं तिय जल मेलति ।
[2]जनु अलि सौं अरविंद-बृन्द, मकरंदन–खेलति ॥५२॥*

[3]छिरकत छैल-छबीले, मंजुल-अंजुल भरि-भरि ।
[4]अरुन-कमल-मंडली, फागु खेलति जनु रँग-करि ॥५३॥†

[5]रुचिर-दृग चल-चंचल, अंचल मैं झलकत अस ।
[6]सरस-कनक के कंजन, खंजन जाल परे जस ॥५४॥

पाठान्तर—

(ट) १—भरि-भरि मंजुल-अंजुल पिय कौं तिय जल मेलत ।
(य) ,,—भरि भरि पिय पैं अंजुल मंजुल तिय जल मेलैं ।
(रा०),,—मंजुल अंजुल भरि-भरि पियकौं तिय जल मेलत ।
(,,) २—मानौं अलिकुल-वृन्द, सहज मकरंदहि खेलत ॥
(द) ,,—मानौं अलिकुल सहजै-बस मकरंदहि झेलैं ॥
(ध) ,,—जानौं अलि अरविन्द वृन्द मकरन्दहि झेलत ॥
*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में पूर्व पद से आगे हैं ।
(ट) ३—छिरकत करि-छल छैल, जमुन-जल अंजुलि भरि-भरि ।
(प) ,,—छिरकत जल ले छैल छबीली अंजुल भरि-भरि ।
(रा०),,—कबहुँ परस्पर छिरकत मंजुल अंजुल भरि-भरि ।
(प) ४—अरुन कमल मंडली फागु खेलै रस-रँग करि ॥
(रा०),,—अरुन कमल मण्डली फाग खेलत रस (जानौं) रँग अरि ॥
*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रतिमें नंबर उनसठ पर है ।
(क) ५—चलत दृगचल, चंचल, अंचल मैं झलकैं यौं ।
(प) ,,—रुचिर-दृगचल चंचल, वर जगमग जगमग अस ।
(क) ६—खरे-कनक के कंजन, खंजन जाल परे ज्यौं ॥
(प) ,,—परे कनक के जाल, सु खंजन तरफरात अस ॥

[1]जमुना-जल मैं दुरि-मुरि, कामिनि करति कलोलैं ।
[2]मनु नव-घन के मध्य, दामिनी दमकति डोलैं ॥५५॥

[3]कमलन तजि-तजि अलि-गन, मुख-कमलन आवत जब ।
[4]उरिहिं छबीली-बाल, छपति जल मैं दबकति तब ॥५६॥

[5]कबहूँ मिलि सब बाल, लाल-छिरकति है छबि अस ।
[6]मनसिज पायौ राज, आज अभिषेक होति जस ॥५७॥*

पाठान्तर—

(क) १—श्री जमुना जल दुरि दुरि कामिनि करत किलोलैं ।
(रा०),,—जल जमुना में दुरि मुरि करत कामिनि जु किलोलैं ।

(छ) २—नव घन के जनु भीतर दामिनि दमकति डोलै ॥
(प) ,,—नव घन भीतर जनु दामिनि, अति दमकति डोलै ॥
(रा०) ,,—जनु घन भीतर भीतर ससिगन तारे तरि डोलैं ॥
(ह) ,,—मानौं नव घन मध्य दामिनी दामिन डोलै ॥

(अ) ३—कमलन तजि कै अलिगन, मुख-कमलन ढिग आवत ।
(रा०),,—अलगन कमलनि तजि सुमुख कमलनि पर आवत ।
(प) ४—छबि मौं छबीली छैल भै टि तन छिनहिं उड़ावत ॥

(म) ,,—छपत छबीली-बाल, हाल जल मैं जु दुरावत ॥
(रा०) ,,—छबि सौं छबोले छैल भे टि तेहि छिनहिं उड़ावत ॥

(अ) ५—कबहुँक सब मिलि बाल, लाल जल छिरकत छबि अस ।
(स) ६—पायौ मनसिजराज, राज अभिषेक होत जस ॥

[1]तिनकी सुन्दर-काति–भाँति मनमोहन भावै।
बाल-बैस की छवि, कवि पे कछु कहति न आवै ॥५८॥

[2]भींजि बसन तन-असन, निपट-छवि अकित है अस।
[3]नैननि कै नहिं बैन, बैन कै नैन नाहिं जस ॥५९॥

[4]नीर-निचोरति जुवतिननि देखि अधीर भए मनु।
[5]तन-बिछुरनि की पीर, चीर रोवति अँसुवन जनु ॥६०॥

पाठान्तर—

(रा०)१—निकसी सुन्दरि भाँति कान्ति मन ही मन भावै।

(श) २—बाल-नैम छवि जैसे कवि पै कही न आवे॥
(ह) ,,—बाल वैस छवि कवि पै कबहूं कहत न आवे॥

(अ) ३—बसन भींजि तन-लिपटि, निपट छवि अंकित है अस।
(ग) ,,—भींजे-बसान लिपटनि की छवि अंकित भई अस।
(च) ,,—भींजे बसन तन लपटन अद्भुत छवि का कहि है।
(रा०),,—भींजि बसन तन लपटि निपट ही अद्भुत छवि सब।

(म) ४—नैनन कौं नहिं बैन, बैन कौं नैननि नहिं है॥
(रा०) ,,—नैननि के नहिं नैन, नैन के नहिन नैन तब॥

(रा०)५—रुचिर निचोरनि जुवति नीर लखि भये अधीर तनु॥

(घ) ६—तन बिछुरन की पीर, चीर (धीर) अँसुअन रोवत जनु॥

[1]निरखि परसपर छबि सो, विहरति प्रेम-मदन-भरि ।
[2]प्रकृति-बाम की छाती, अजहूँ धरकति धरि-धरि ॥६१॥*

[3]तब इक द्रुम-तर चिते, कुँवर-वर आग्या दीनी ।
[4]निरमल-अंबर, भूषन, तिन तहँ बरखा-कीनी ॥६२॥

[5]अपनी-अपनी रुचि के, पहिरे-बसन बनी छब ।
[6]जगत-मोहिनी जिती, तिती ब्रज-तिय मोहनि सब ॥६३॥

पाठान्तर—

(रा०) १—बहु परसपर छबिमां भावन, प्रेम मदन भरि ।

(अ) २—प्रकृति बाम की छाती अजहूँ धरक्त तिनके डरि ॥
(ह) ,,—प्राकृत काम छाति अजहूँ धरक्त जाके डरि ॥

*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नंबर इक्यावन पर है ।

(रा०) ३—तब इक द्रुम तन चिते कुँवर अस आज्ञा दीनी ।

(स) ४—निरमोलक अम्बर, भूषन, तिहिं बरषा कीनी ॥

(प) ५—रुचि अपनी अपनी के पहरे बसन असन छुन ।
(रा०),,—अप अपनी रुचि के पहिरे छबि परत न बरनी ।

(रा) ६—जगत मोहिनी जे तिनकी ब्रज तिय मोहनि सब ॥
(च) ,,—जग में जे मोहन हैं तिन को ब्रज मोहनि सब ॥
(रा०) ,,—जग मोहिनी जिती तिन की मोहिनि ब्रज बरनी ॥
(ह) ,,—जग में ए मो— आदु तिन की ब्रज तिय मोहिनी सब ॥

[1]सरस-सरद की जोति, मनोहर जगमग-राती ।
[2]खेलत रास रसिक-नर, प्रति-छिन नई-नई-भाँती ॥६४॥

[3]ब्रह्म-मुहूरत कुँवर-कान्ह-नर घर आए जब ।
[4]गोपन अपनी गोपी, अपने-ढिंग जानी तब ॥६५॥*

फलस्तुति वर्णन

[1]नित्त रास-रस-मत्त, नित्त गोपी-जन-वल्लभ ।
[2]नित्त निगम जो कहत, नित्त नव-तन अति-दुल्लभ ॥६६॥

पाठान्तर—

(अ) १—यहै सरद की जिती मनोहर जगमग-राती ।
(ट) „—ऐसैं ही जेतिक परम मनोहर सरद हि राती ।
(रा०)„—ऐसें ही जोति सरद की परम मनोहर रातें ।
(ढ) २—खेलत रास रसिक पिय, दिन दिन नई नई भाँती ॥
(रा०) „—क्रीडत हैं पिय रसिक सु दिन दिन अन अन भाँतैं ॥
(फ) ३—ब्राह्म महूरत कान्ह कुँवर घर आए गृह जब ।
(रा०)„—ब्रह्म मुहूरति कुँअरि कान्ह, निज (सब) घर आए तब ।
(म) „—गोपन अपनी गोपी, अपने ढिँग मानी तब ॥
(रा०) „—गोपनि अपनी गोपी, अपने ढिँग पाई सब ॥

*उक्त पद नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में पूर्व पदों से आगे है ।

(क) १—नित्य रास रस मत्ते, नित गोपी जन वल्लभ ।
(ग) „—नित्य निगम जो कहियतु, नित नौतन तन दुरलभ ॥

[1]यह अदभुत-रस-रास, कहत कछु कहि नहिं आवै ।
सेस सहस-मुख गावै, अजहुँ पार न पावै ॥६७॥ *

[2]सिव मन-ही-मन ध्यावै, काहू नाहिं जनावै ।
[3]सनक, सनन्दन, नारद, सारद, अति-मन-भावै ॥६८॥

[4]जद्यपि हरि-पद-कमल, जु कमला सेवति निस-दिन ।
तद्यपि यह रस सपने, कबहूँ नहिं पायौ तिन ॥६९॥

पाठान्तर—

(र) १—इहि अद्भुत सुख रास, महा-छवि कहत न आवै ।
(प) ,,—अद्भुत यह रस-रासि, महा छवि कहत न आवत ।
सेस सहस मुख गावत, तौहू अंत न पावत ॥

* "मजुलि अंजुल भरि भरी पिय पै तिय जल मेलत" से लेकर उक्त पद्य तक को पद्यावली (क) (प) प्रतियों में नहीं है । और नागरी प्रचारणी वाली प्रति में उक्त पद कुछ पाठ भेद के साथ नम्बर चालीस पर दिया है । यथा —

अद्भुत रस रच्यो रास कहत कछु नहिं कहि आवै ।
ज्यों मूँके रस को चसको मन ही मन भावै ॥

(क) २—सिव मुनि नित ही ध्यावैं, कछुक काहू न जनावैं ।
(प) ,,—सिव अजहूँ मन ध्यावैं, काहू नाहिं जनावैं ।
(प) ३—सनक सनन्दन, नारद, सारद अति हिय-भावे ॥
(रा०) ४—जद्यपि रमा रमनी कमला, पद सेवत निस दिन ।
यह सुख अपने सपने, कबहूँ नहिं देख्या तिन ॥

[1]जदपि सप्त-निधि भेदिनि जमुना निगम-बखानैं ।
[2] ते तिहि धारहिं धार रमत, जल छुवत न आनैं ॥७८॥

[3]रसकि जनन के संग रहैं, हरि-लीला गावै ।
[4]परम-कान्त, एकान्त प्रेम-रस तब हो पावै ॥७९॥*

[5]इहि उज्जल-रस-माल, कोटिं जतनन करि पोई ।
[6]सावधान ह्वै पहिरौ, वरु तोरौ मति कोई ॥८०॥

[7]स्रवन, कीरतन, ध्यान-सार, सुमिरिन कौ है पुनि ।
[8]ग्यान-सार, हरि-ध्यान-सार, स्रुति-सार, गुही गुनि ॥८१॥

पाठान्तर—

(रा०) १—जदपि सपत निधि भेदक जमुना निगम बखानहिं ।
(य) २—सो तिहि धारहि धारि रमत जल छुवै न आनैं ॥
(रा०) ,,—ते तिहि धारहि धार रमत छुमत न अल आनहिं ॥
(रा०) ३—हरि दासन को संग करै हरि लीला गावै ।
(स) ४—परम कान्ति एकान्त भगति रस सौ (सोइ) मन पावै ॥
*उक्त पद्य (अ) (च) (ट) (य) प्रतियों में नहीं हैं ।
(स) ५—उज्जल रस मनि माला कोटि जतन कै पोई ।
(ह) ६—सावधान हेरौ फेरौ, तोरौ जिनि कोई ॥
(अ) ७—स्रवन कीरतन सार, सार सुमरन कौ है पुनि ।
(ट) ,,—उन करि पुनि तन-सार, सार सुमरन कौ पुनि पुनि ।
(रा०) ,,—श्रवन सार, कीर्तन को सार सुमिरन कै सार पुनि ।
(च) ८—ग्यान सार औ ध्यान-सार, सब सार यहै गुनि ॥
(प) ,,—सब सारन कौ सार ध्यान हरि जानि गुथी गुनि ॥
(रा०) ,,—ज्ञानसार, विज्ञानसार, सतसार गहति गुनि ॥

परिशिष्ट-पदावली

—— o ——

राग—भैरव

हा हा हो हरि ! नृत्य करौ।
जैसैं करि मैं तुमहि रिझाऊँ, त्यौं मेरौ-मन तुमहुँ हरौ ॥
तुम जैसैं स्रम-याहु करत हौ, तैसैंई मैं हुँ डुलाऊँ।
मैं स्रम-देखि तिहारे उर कौं, भुज-भरि-कंठ-लगाऊँ॥
मैं हारी, त्यौंही तुम हारौ तब, चरन चाँपि स्रम-भैंटौं।
'सूर' स्याम ज्यों उछँग लेहु मोहि, त्यौंहीं हँसि मैं भैंटौं॥

❀

मान लाग्यौ, गिरधर गावै।
तत-थेई, तत-थेई, तततत-ता-थेई, भैरों-राग मिलि-मुरली-बजावै॥
नाँचत नव-वृषभाँनु दुलारी, अवघर-गति मैं गति उपजावै।
गिरिधर-पिय-प्यारी की पद-रज, "कृष्णदास" लै सीस चढावै॥

❀

मदन-मोहन कमल-नैंन, निरतति-श्याम-रंगे।
तत-थेई, तत-थेई, थेई, थेई, गति अनेक लेति—
मान, मान करत रूप, सहज सरस सुघंगे॥

कान-कुंडल झलमलात, पीत-वसन फरफरात,
रनन, झुनन धरति चरन, भ्रुकुटी-भाव भगे ॥
मोही सुर ललना, भामिनि सिद्ध सकल सुनति स्रवन,
मुरली-नाँद, ग्राम, जाति, अधर कल-उपगे।
"गोविंद" प्रभु ललितादिक-सहचरी मिल जूथ सकल,
वारि-फेरि देति मदन कोटि-कोटि अगे ॥



प्यारी-ग्रीवा-भुज-मेल, निरतत पिया-सुजान।
मुदित परस्पर लेति गति मैं गति,
गुन-रासि राधे, गिरिधरन गुन-निधान ॥
सरस-मुरली धुनि मिलै, मधुर-सुर—
रास रँग भीने, गावैं अवघर तान, बँधान।
'चतुरभुज' प्रभु स्यामा स्याम की नटनि देखि
मोहे खग, मृग,वन थकित व्यौंम-यान ॥



निरतति गुपाल संग, गोपिका मिली।
अद्भुत-नट-भेष देखि, कोटि काम अति विसेखि,
मुरली अधर-मधुर धरैं सप्त-सुर-रली ॥
गावति पिक कंठ सरस, परम रीझि तान वाँन,
भामिनी-सुजान वृपभानु की लली।
वलय, नूपुर, किंकनी कटि-झलकत, तत थेई-थेई—
उघटत, मुरज-सब्दावलि, ग्रीव भुज पिली ॥
बाजत मधुरैं मृदंग, ताधिलांग गति सुघंग,
संग लेति देति ताल, रास—मंडली।

कोलाहल करत हंस, मोर सोर चहुँ ओर,
मोर भाग फूली मनों कंज की कली ॥
वृन्दावन-नव निकुंज, प्रेम पुंज भरे हरित—
निरखि तरनि तरनि तनया-तीर चाँदनी भली ।
वल्लभ चरनारबिंद पंकज मकरन्द-सरस
करत पान "भगवान" मोहन अति अली ॥
॥
नाँचति वृषभानु-कुँवरि, हंस-सुता पुलिन मध्य,
हंस हंसनी मयूर मंडली बनीं ।
नाचत गुपाल लाल, मिलवत झप ताल चाल,
गुंजत अति मत्त-मधुप कामिनी अनीं ॥
पदक-लाल, कंठ माल तरनि तिलक मलक भाल,
श्रवनि फूलि, वर दुकूल, नासिका मनीं ।
नील कंचुकी सुदेस, चंप-कली गलित केस,
मुकलित मनि मन-दाम, कटि सु काछनी ॥
मरकत-मनि-वलय-राज, मुखुर नूपुर धुनि सुभाज,
जावक-जुत चरनन-नख चन्द्रिका घनीं ।
मंद हास्य, भ्रू विलास, रास, लास, सुघर विलास,
अलग लाग लेति निपुन राधिका-गुनीं ॥
काम सिंधु, कंतव विंदु, रीझि रहे, चरन गहे,
साधु-साधु कहत फिरत राधिका धनीं ।
भैंटति गहि बाँह मूल, उरज परसि भई फूल,
"स्याम" बचन सानुकूल, रसिक-जीवनी ॥
॥
सुघर नाचति नवल किसोरी ।
थेई-थेई करति, चँहति पीतम दिसि, वदन चंद मनों तृषित चकोरी ।
तान, बँधान, मान मैं भामिनि, रिझए स्याम कहत हो—हो री !
"हित हरिबंस" परसपर पीतम, बरनंद लयौं मोहन चित चोरी ॥

अद्भुत नट-भेव धरैं नाँचत गिरिधरन लाल,
उघटत संगीत तत-थेई थेई-थेई साधे।
लेत उरप मान लाग-डाट सुघर-तान, आन आन-
गुन-गान तन तन-तन-गति बँधान साधे॥
सरद निसा पूरनचंद, त्रिविध वायु बहति मंद,
खग,मृग, द्रुम, वेली, पत्र, पत्र रटत राधे।
जुवती मंडल समूह, राग रंग कौतूहल,
"राम-कृष्ण हित दमोदर" चरन अज अराधें॥

राग—रामकली

देखौ देखौरी! नागर-नट, निरतत कालिन्दी तट,
गोपिन के मध्य राजै मुकट लटक।
काछिनी, किंकनी कटि, पीतांबर की चटक,
कुंडलन किरन-रवि-रथ की अटक॥
तत थेई, तत थेई सबद, सकल घट उरप—
तिरप-गति पग की पटक।
रास मैं श्री राधे! राधे!! मुरली मैं एक रट,
"नंददास" गावै तहाँ निपट निकट॥



निरतत स्याम, स्यामा-हेत।
मुकट-लटकनि भृकुट मटकनि, नारि-मन-सुख देत॥
कबहुँ चलत सुघंग-गति लै, कबहुँ उघटत बैंन।
लोल कुंडल, गंड-मंडित, चपल नैंननि सैंन॥
स्याम की छबि निरखि नागरि, रही इकटक-जोड़।
"सूर" प्रभु उर लाइ लीनों, प्रेंम-गुन-करि-पोइ॥

राग—बिलावल

चल्हु राधिके सुजान ! तेरे हित गुन निधान,
राम रच्यौ कुँवर कान्ह, तट कलिन्द-नंदनी।
निरतति जुवती-समूह, राम-रंग अति कुतूह,
बाजति रस मुरलिका, अति अनंदनी॥
बंसीबट निकट जहाँ, परम-रमन भूमि तहाँ,
सकल-सुखद बहति मलय बायु-मदनी।
जाती ईसर निकास, कानन अति-मैं सुवास,
राका निसि-सरद-मास, निमल चंदनी॥
"कुंभन दास" प्रभु निहारि, लोचन भरि घोष-नारि,
नरन सिरन सौन्दर्य सीम, दुख निकंदनी॥*



निरतति राधा नंद किसोर।
ताल, मृदंग सहचरी बजावति, बिच-बिच मुरली कौ कल घोर॥
उरप, तिरप पग धरत धरनि पैं, मंडल फिरत भुजन-भुज-जोर।
सोभा अमित बिलोकि "गदाधर" रीझि-रीझि डारत तृन तोर॥

राग—टोडी

सुनौं हो स्याम ! इक बात नई।
आज रास राधा अविलोक्यौ, मेरे-मन इहि फूल भई॥
हँसि-बोलन, डोलन, बन बिहरन, वे-चितवन न जात चितई।
कौन कहै वृषभानु-नंदनी, प्रगट भई मनौं मदन जई॥

---

*उक्त पद में एक तुक (चायन) कम है।

तुम सम नैंन, बैंन तुमहीं सम, तुम सम आँनद-केलि-मई।
तिहारो रूप धरि तिहारी ही सौं, तुमहिं परसि भई तुमहीं मई॥
माँथैं मुकुट, पीतपट, मुरली, बनमाला छवि-छाई रई।
रचक-भेद रह्यौ या तन मैं, औरु सकल-छवि पलट लई॥
तिय आलिंगन, पिय अवलंबन, पिय कौं हँसि कैं अंक दई।
फिरि चितवनि औ मुरि-मुस्किस्यानि,उघटनि मिस-करि नृत्य-ठई।
इहि कौतुक अनूप मन-मौंहन, मनौ घोप रस बेलि छई।
"सूरदास" प्रभु के उर परसत, ललित वलित वलिहारि गई॥



रास-मंडल मैं बन-ठन माधौ गति मैं—गति उपजावै हो।
कर-कंकन झनकार मनोहर, प्रमुदित बैंनु-बजावै हो॥
स्याम-सुभग तन पैं दच्छिन कर, कूजत चरन-सरोजै हो।
अबला वृंद अवलोकत हरि-मुख, नैंन-विकास मनोजै हो॥
नील पीत पट चलत चारु नट, रसमें नूपुर कूजें हो।
थनक कुंभ कुच बीच पसीना, मनुहर मोंतिन पूजें हो॥
हेम लता तमाल अवलंबित, सीस मल्लिका फूली हो।
कुंचित-केस, बीच अरुझाने, मनु अलि-माला भूली हो॥
सरद-विमल निस चंद विराजत, क्रीडत जमुना-कूलें हो।
"परमानँद स्वामी" कौतूहल, देखत सुर-नर भूलें हो॥



बिसद कदंब सघन-वृन्दावन, रच्यौ रास तरनि तनया तट।
सरद-निसा-उडपति उजियारी, पूरयौ नाँद-मुरली नागर नट॥
स्रनन सुनति चलीं व्रज सुन्दरि, साजि-सिंगार पैंहेर भूषन पट।
अति-हुलास, कुमुदिनी-प्रफुल्लित, निरखि लाल ठाडे बसी-बट॥
मंडल मधि नाँचति पिय-प्यारो गावत सुर टोडी-तान निकट।
"दास सखी" देखति नैंननि भरि, वारि-फेरि डारौं कोटि-मदन-भट॥

रुचिर रमति रुचि-रासम।
कुसुमित कानन नव वेली, द्रुम,निजकृत उडुप प्रकाशम ॥
युवती युगल युगल प्रति माधो, करत विनोद विलासम्।
वेणु, मृदंग, मजीर,किंकिणी, क्वणित मधुर मृदु हासम् ॥
यमुना-तीर भीर खग, मृग की, मंद समीर सुवासम।
वरषत कुसुम इन्द्र, सुर धावत, शंकर त्यजि कैलाशम् ॥
निरखि नैन-छवि सुरभ्यौ मनमथ, लोचन पद्म पलाशम्।
"विष्णुदास" प्रभु गिरिधर क्रीड़ति,कथा कथित शुक व्यासम् ॥

राग—पट्

आज कमनीय नव-कुंज वृन्दा-विपिन,
मदन मोहन सुरस रास मंडल रच्यौ।
उदित उडराज लखि मुदित ब्रजराज-सुत,
प्रान प्यारी सहित त्रिविधि गति मति नच्यौ ॥
मुकुट की लटक, कुंडल की चटक,
भृकुटीन की मटक, पग पटक धरनी न परत।
हार उर रुरत, कंकन ललित, किंकिनी—
नुपुर मंजीर धुनि सुनत जन मन हरत ॥
एक तैं एक ब्रज-सुन्दरी अधिक गुन—
रूप रस-मत्त गिरिधरन-संग सुर-भरत।
सबै जोबन भरी उरप पुनि तिरप—
संगीत गति अलग मति तत थेई, थेई धरत ॥
स्रवन सुनि सुर नम्र सुरतिय सकली,
यदपि पिय निकट तौऊ नाहिं धीरज धरत।
रसिक मनि मुकुट-नँदलाल की रीति यह—
"गदाधर-मिस्र" नेंकु न मन तें टरत ॥

रास विलास रच्यौ नागर नट।
जुरि मंडल निरतति व्रज बाला, नवल-निकुंज सुभग जमुना तट॥
उपजत तॉन, वधॉन, सप्त-सुर, बाजत ताल, मृदंग, बीन रट।
सनमुख ह्वै नॉचति पिय प्यारी, लेति सुधंग चाल-गति अट-पट॥
रसिक विहार निरखि ससि हार्‌यौ,सरद-निसा भूल्यौ अपनी अट।
'कृष्णदास' गिरिधर-श्रीराधा राजति मेघ मनौं दामिनि घट॥



खेलत रास रसिक—नॅंदलाल।
जमुना-पुलिन सरद निस-सोभित, रचि मंडल ठाडीं व्रज बाल॥
तत थेई, तत थेई, थेई, थेइ उघटत, बाजत झॉंझ, पखावज, ताल।
जम्यौ सरस-अति राग परसपर, गुंजत कौंमल-वैंनु-रसाल॥
सनमुख लेति उरप, तिरप दोउ, राधा-रसिकनि-मदन गुपाल।
मनौं जलद-दामिनि-रस-पूरन, कनक-लता जनु स्याम तमाल॥
सुर पुर-नारि निहारि परम-रस, रति पति मन में भयौ विहाल।
थकित चंद, गति मंद भयौ अति, चूके मुनि ध्यान धरत तिहिं काल॥
परम-विलास रच्यौ नागर-नट, विलुलित उरसि मनौं अलि-माल।
"कृष्णदास" लाल गिरिधर-गति, पावत नाहिं हंस्ति, मराल॥

राग-सारंग

बन्यौं रास मंडल अहो! जुवति-जूथ-मधि नाइक नॉंचै, गानै।
उघटत सबद थेई, थेई, ता-थेई, गति मैं गति उपजावै॥
बनीं राधा वल्लभ जोरी, उपमा दीजै को री!
लटकत है बॉंह जोरी, रीझि रिझानै।
सुर, नर, मुनि मोहे, जहॉं तहॉं थकित भए,
मींठी मींठी तान लालन बैंनु बजावै॥

अंग-अंग चित्र कीऐ, मोर-चंद माथैं दिऐं,
काछनी काछैं पीतांबर सोभा पावै।
"चतुर-बिहारी" प्यारी प्यारे ऊपर वारि डारी,
तन, मन धन, यह सुख कहत न आवै॥

❀

नट-वर-गति निरतत हैं, भक्तन उर परसत हैं,
पुलकित-तन हरषत हैं, रास में लाल-बिहारी।
बाजत ताल, मृदंग, उपंग, बीना, बाँसुरी, सुर-तरंग,
थ्रं थ्रं-ता, थ्रं थ्रं-ता, थग थग लेति छंद भारी॥
कटि-काछिनी पीत, सुरंग, मोर मुकट अति सुघंग,
राख्यौ अरध भाल ललित सीस-पेच भारी।
आरति करति ब्रज की बाल, हँसि हँसि निज कंठ लाइ।
देखत सुर, नर, मुनि औ 'रामदास' बलिहारी॥

❀

तरनि तनया तीर लाल गिरिवर धरन,
राधिका-संग निरतत सुभग रास में।
तत-थेई, तत थेई करत गति भेद सौं पिय,
अंग अंग मिलत सुन्दरी ता समैं॥
नंद-नंदन निरखि सुर-सहित सुर नारि,
नैंनु चल नीद मुनि मोहे अकास में।
थक्यौ चंद औरु सब तारका हू थकि रहीं,
तान सुर-गान "ब्रज पति" धरत जा समैं॥

राग—नट

नागरी [1] नट—नाराइन गायौ।
तान, मान, बधान सप्त सुर, रागहिं राग मिलायौं॥

चरन घुघरू जत्र भुजन पैं, नीकौ भमक जमायौ।
तत-थेई, तत-थेई, लै गति मैं गति, पति-ब्रजराज रिझायौ ॥
सकल-तियन मैं सहज चातुरी, अग सुधग दिखायौ।
"व्यास" स्वामिनी धनि-धनि राधा,रास मैं रग रचायौ ॥



आज बन नीकौ रास बनायौ।
पुलिन पवित्र, सुभग जमुना-तट, मौहन वैनु बजायौ ॥
कर ककन, किंकिनि-धुनि, नूपुर, सुनि खग, मृग सचुपायौ।
जुवती-मडल-मध्य स्याम घन, नट नाराइन गायौ ॥
ताल, मृदग, उपग, मुरज, ढफ, मिलि रस सिन्धु बढायौ।
विविधि विसद वृषभानु नदनी, अग सुधग दिखायौ ॥
अभिनै-निपुन लटक लट लोचन, भृकुटि अनग लजायौ।
तत थेई, तत थेई लै नौतन गति, पति ब्रजराज रिझायौ ॥
परम उदार रसिक चूरामनि, सुख वारिद बरपायौ।
परिरभन, चूबन आलिंगन, उचित जुवति-जन पायौ ॥
बरखत कुसुम मुदित नभ नाइक, इन्द्र निसान बजायौ।
'हित हरवस" रसिक राधा पति, जस वितान जग छायौ ॥

राग–पूर्वी

निरतत गुपाल लाल तरनि तनया तीरे।
जुवती जन सग लिऐ, मनमथ-मन करख किऐ,
अग अग सुखद किऐं, राजत बलवीरे ॥
लावन्य निधि, गुन-आगर कोक कला गुन सागर,
त्रिविधि ताप हरति अति सीतल समीरे।
'आसकरन" प्रभु मौहन नागर, गुन निधान सगीत सागर,
रिझवत ब्रज बधू नागर फरकत पद-पीरे ॥

राग–मालव

मदन गुपाल रास मंडल में मालव-राग रस भरयौ गावै।
अवघर तान नेधान सप्त सुर मधुर-मधुर मुरलिका बजावैं॥
निरतत सुलफ लेति नौतन-गति बहु बिधि हस्तक भेद दिखावैं।
उघटत सबद तत थेई, तत थेई जुवति बृन्द मन मोद बढ़ावैं॥
थयथौ चद, मोहे खग, नग, मृग, प्रति छिन अति जु अनागति लावैं।
"चतुरभुज" प्रभु गिरिधर नट नागर, सुर, नर, मुनि गति, मति-
बिसरावैं॥



कमल नैन प्यारो, अवघर-तान जानैं।
लाग, अलाग, सुर राग, रागिनी, बहुत अनागत आनैं॥
रसिक राइ सिरमोर गुनन में, गुन तुम हीं हौ जान।
"कृभन दास" प्रभु गोबरधन धरि, हरत सबै मन करत गान॥



निरतत लाल गुपाल रास में, सकल ब्रज बधू संगे।
गिड़ गिड़ तक थग, तत थेई, तत थेई, भामिनि रति रस रंगे॥
सरद निमल नभ उडपति राजत, गावत तान—तरंगे।
ताल, मृदंग, झाँझ औ झालर, बाजत सरस मुचंगे॥
सिव, बिरंच मोहे सुर नर, मुनि, रति पति-गति मति भंगे।
"गोबिंद" प्रभु रस रास रासिक-मनि, भामिनि लेति उछंगे॥

राग–सोरठ

धन्यो रास-मंडल धर तामें-महा मुदित मृदुल राधा प्यारी।
बरनों कहा बानक अंग अंग की एक रूप, एक चेम
एक रंग, एक रास ता में लेत उपजत गति अति न्यारी॥
गावत तान तरंग, निरतत उरप, तिरप—
लाग, डाट, उघटत सबद उपज महा री!

लोल कटि-देस स्रति रतन-मेखला,
¹ नूपुर क्वनित हस्त हाव दिखरावै ॥
चपल मोहै नैन-रूप, रुचिर मुसिकावनी,
रूप, गुन-रासि प्रान पतिहिँ रिझावै।
वृषभाँनु-नदनी, गिरिधरन नद-सुत-
चरन रैनु नित तहाँ "कृष्णदास" पावै ॥

राग—जै-जैवन्ती

वृन्दावन वसी-रट, वसीवट, जमुना तट,
रास मैं रसिक-प्यारौ खेल रच्यौ वन मैं।
राधा-माधौ कर जोरैं, रवि ससि होत भौरैं,
मडल मैं निरतति दोऊ सरस सघन मै ॥
मधुर-मृदग वाजे, मुरली की धुनि गाजे,
सुधि न रही कछू री ! सुर, मुनि, जन मै।
"नददास" प्यारौ, रूप उजियारौ कृष्ण,
क्रीडा देखि थकित सब जन मन मैं ॥

राग–ईमन

लाल-सग, रास रग, लेति मान रसिक रवन,
थ्र-थ्र ता, थ्र थ्र ता, त त येई गति लीने।
स री ग म प ध नी धुनि, व्रजराज कुँवर गावत री !
अति जति सगीत निपुन तननन गति चीने ॥
उदित-मुदित सरद चद, टूटे कचुकी के वद,
निरखि-निरखि विभव कोटि मदन हीने।
विहरत वन रस विलास, दपति-मन ईषद हास,
'छीत स्वामि" गिरिवरधर रस वस तव कीने ॥

राग—सारंग

बन्यो मोर मुकुट नटवर वपु स्याम-सुन्दर कमल-नैन,
बाँकी भौंह, ललित भाल, घुँघरारी अलकें।
पीत बसन, गोपी माल, हिये पदक कंठ लाल,
हँसनि, बोलनि, गावनि गंड स्रवन कुंडल झलकें॥
कर-पद भूषण अनूप, कोटि मदन मोहन रूप,
अद्भुत बदन चंद देखि, गोपी भूली पलकें।
"कहि भगवानहित रामराय" प्रभु ठाढ़े रास मंडल में,
राधा सों बाँह जोरी किये, हिये प्रेम-ललकें॥

राग—अड़ाना

बंसीवट के निकट हरि रास रच्यो है, मोर मुकुट औ ओढ़ें पीत पट।
वृन्दावन-कुंज सघन बन, सुभग पुलिन श्री जमुना के तट॥
आलस भरे उनींदे दोउ जन—(श्री) राधा जू औ नागर नट।
'श्याम' रसिक तन, मन, धन फूले, लेति बलैयाँ कर अँगुरिन चट॥

राग—केदारा

सुनि धुनि मुरली बाजे बन, हरि रास रच्यौ।
कुंज कुंज द्रुम, बेलि प्रफुलित, मंडल कंचन मनिन खच्यौ॥
निरतति जुगल किसोर किसोरी, मन मिल राग केदारौ सच्यौ।
"श्री हरिदास" के स्वामी स्यामा कुंजविहारी, नीकैं आजु गुपाल नच्यौ॥

※

रास रच्यौ बन कुँवर-किसोरी।
मंडल-बिमल-सुभग वृन्दावन, जमुना पुलिन स्याम घन घोरी॥
बाजत बैन, रबाब, किन्नरी, कंकन, नूपुर, किंकिनि-सोरी।
तत थेई, तत थेई सबद उघटत पिय, भले बिहारि बिहारिन जोरी॥

बरहा मुकुट चरन तट आवत, धरैं भुजन मैं भामिन कौं री।
अलिंगन, चुंबन, परिरंभन, "परमानंद" डारत तृन तोरी॥

❀

आज नँद नंद सुरस-चंद बन राजै।
जटित मनि मुकुट औ सुभग कुंडल चटक,
वसन पीत पट भ्रू मटक छाजै॥
रास मैं रसिक वर, ललित संगीत-सुर,
मधुर-मुरली, मृदंग, ताल—बाजै।
"श्री विट्ठल गिरिधरन" कनित नूपुर चरन,
सुनति भईं घोष तिय थकित आजै॥

❀

नाँचति लाडिली-रास मैं सुनौं हो सहेली ! रंग रह्यौ।
ताही समैं रस-रास सहाइक, सुखद मलय सौ पवन बह्यौ॥
उडपति-किरन सुरंजित कानन, नव-कुसुमावलि तिमिर दह्यौ।
जुवती मंडल मध्य स्याम घन, राग वारिनिधि बैंनु गह्यौ॥
बोलत तोहिं सुरत मिलवन कौं, उठि चलि मान मेरौ कह्यौ।
"कृष्णदास" प्रभु गिरिधर नागर, तेरौ बिलंब क्यौं जात सह्यौ॥

❀

आजु गुपाल रच्यौ रास, देखति होति जिय हुलास,
नाँचति वृषभानु-सुता-संग रँग भीने।
गिडि गिडि, तक थुंग, थुंग, ततत-थेई—थेई, थेई,
गावत केदारौ-राग सरस-तान लीने॥
फूले बहु-भाँति-फूल, सुभग पुलिन-जमुना कूल,
मलय पवन बहत गगन, उडपति गति छीने।
"गोविंद" प्रभु करति केलि, भामिनि रस सिन्धु मेलि
जै जै सुर सबद कहत आनँद-रस कीने॥

राग–बिहाग

वन मैं रास रच्यौ बनवारी।
जमुना पुलिन मल्लिका फूली, सरद रैन उजियारी॥
मंडल-बीच स्याम घन सुन्दर, राजति गोप कुमारी।
प्रगटत कला अनेक-रूप तिहिं अवसर लाल बिहारी॥
सीस मुकुट कुंडल की झलकन अलक बनी घुँघरारी।
कंबु कंठ ग्रीवा की डोलन, छीन लंक लेहें हारी॥
धाइ, धाइ झपटत, टर लपटत, उरप, तिरप-गति न्यारी।
निरतत, हँसत, मयूर मंडली, लागत सोभा भारी॥
बेनु-नाँद-धुनि सुनि सुर, नर, मुनि,तन की दसा बिसारी।
"श्री विट्ठल" गिरिधरन लाल की बानिक पैं बलिहारी॥

❀

मानों माई घन-घन अंतर दामिनि।
घन दामिनि, दामिनि घन अंतर, सोभित हरि ब्रज-भामिनि॥
जमुना पुलिन मल्लिका मुकलित, सरद सुहाई जामिनि।
सुन्दर ससि, गुन, रूप-रासि निधि, आँनद मन बिलासिनि॥
रच्यौ रास, मिलि रसिक-राइ सौं, मुदित भई ब्रज-बामिनि।
रूप निधान स्याम घन सुन्दर, अंग अंग अभिरामिनि॥
खंजन, मीन, मयूर, हंस पिक, भेद नहें गज-गामिनि।
कौतुक घने सु सुर "नागर" सँग, काम बिमोह्यौ कामिनि॥

❀

पिय कौ मँचवनि सिरताजति प्यारी।
वृन्दावन मे रास रच्यौ है, सरद-रैन-उजियारी॥
ताल, मृदंग, उपंग बजावति, अलि प्रवीन ललितारी।
रूप-भरी, गुन हाथ छरी लै, हरपति छैल बिहारी॥
बीना, बैनु, नूपुर धुनि बाजत, खग-मृग बुद्धि बिसारी।
"व्यास" स्वामिनी की छबि निरखति, रीझि देति कर तारी॥

श्री रासलीलाऽमृतस्तोत्र

बजति कुंज में मंजु-बाँसुरी, व्रज-वधू बँधी प्रेम-रासुरी।
घर तजौं गईं कृष्ण-पासुरी, सरद-चंद कीन्यौं उजासु री॥

हरि कियौ जबै मद हासुरी, निरखि कें भयौ ताप-नासु री।
सुमन-कुंज राजैं विकासुरी, भ्रमर-पुंज गाजैं सुवासु री॥
गुन भरी तिया रूप रासुरी, पुनि प्रवीन हैं प्रेम गाँसुरी।
अतनु-मोद-भान प्रकासुरी, मिलि गुपाल कीन्यौं विलासु री॥

मद-गुमान हीं जानि तासुरी, ह्वै मैं छिपे श्री निवासु री।
विरह जाति बाढ्यौ हुतासुरी, तरु-लतानि पूँछें उदासुरी॥
सघन-कुंज कीनीं तलासुरी, गुन-कथा रची याहि आसुरी।
भरति नैंनि ऊँचे उसासुरी, करि-कृपा मिले पीत वासुरी॥

बदन-कँज है चारु-हाँसुरी मदन-मान जातैं निरासुरी।
कर गहैं जुरीं आस-पासुरी, भरति अंक बाढ्यौ हुलासुरी॥
अधर-पान कीनैंहूँ प्यासुरी, मिटति नाँहि जैसैं उपासुरी।
लिपटि स्याम सौं ऐसैं भासुरी, घन सुदामिनी भाद्र-मासुरी॥

करति कृष्ण के संग रासुरी, सरस राग गावैं खुलासुरी।
सुर जु मंत्र नीकैं निकासुरीं, मुरज बीन बाजैं मिठासुरी॥
बजत मंजु मंजीर लासुरी, नचति मोर छाँड़ैं अवासुरी।
सुर-विमान छाए अकासुरी, परत पुष्प वृष्टी तहाँ सुरी॥

कटि गई तनैं नेह फाँसुरी, छूटि गयौ जु संसार त्रासुरी।
चरन-भाँकि दीजै निवासुरी, सरन "गोकुलाधीस" दासु री॥*

---

*उक्त छंद, दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता और चौरासी वैष्णवों की वार्ता के रचयिता प्रसिद्ध श्री 'गोकुलनाथजी गोस्वामि कृत है।

---

१ से ११२ तक मुद्रक प० विश्वम्भरनाथ भार्गव स्टैंडर्ड प्रेस इलाहाबाद

भँवर-गीत

ऊधो[1] को उपदेस सुनो ब्रजनागरी,
रूप सील लावन्य सबै गुन आगरी।
प्रेम धुजा रसरूपिनी उपजावनि सुख पुंज,
सुन्दर स्याम बिलासिनी नव बृन्दावन कुंज।
सुनो ब्रजनागरी ॥ १ ॥

कहन स्याम सँदेस एक मैं तुमपै आयौ,
कहन समै संकेत कहूँ औसर[2] नहि पायौ।
सोचत ही मन में रह्यो कब पाऊँ इक ठाउँ,
कहि सँदेस नँदलाल को बहुरि मधुपुरी जाउँ।
सुनो ब्रजनागरी ॥ २ ॥

सुनत स्याम को नाम ग्राम गृह की सुधि भूली,
भरि आनँद रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूली।

पाठान्तर—
१ ऊधव को उपदेस।
२ औसर नहि पायो।

पुलकि रोम सब अँग भये भरि आये जल नैन,
कंठ घुटे गद्गद गिरा बोले जात न बैन।
व्यवस्था[1] प्रेम की ॥ ३ ॥

अर्घासन बैठारि बहुरि परिकरमा दीन्ही,
स्याम सखा निज जानि बहुरि सेवा बहु कीन्ही
बूझत[2] सुधि नँदलाल की बिहँसत मुख ब्रजबाल,
नीके हैं बलबीर जू बोलति बचन रसाल।
सखा सुन स्याम के ॥ ४ ॥

कुसल स्याम औ राम[3] कुसल संगी सब उनके,
जदुकुल सिगरे कुसल परम आनंद सबन के।
बूझन ब्रज कुसलात को हौं आयौ तुम तीर,
मिलिहैं थोरे दिवस मैं जनि जिय होहु अधीर।
सुनो ब्रजनागरी ॥ ५ ॥

सुनि मोहन संदेस रूप सुमिरन ह्वै आयौ,
पुलकित आनन कमल अंग आवेस जनायो।

---

१ विवस्था प्रेम की।
२ पूछत सुधि नँदलाल की।
३ राम अरु स्याम।

बिहवल[1] ह्वै धरनी परीं व्रजबनिता मुरझाय,—
दै जल छींट प्रबोधहीं ऊधो[2] बैन सुनाय।
सुनो व्रजनागरी ॥ ६ ॥

वे तुमतें नहिं दूरि ग्यान की आँखिन देखो,
अखिल बिस्व भरपूरि रूप सब उनहिं बिसेखो।
लोह दारु पाषान में जल थल महि आकास,
सचर अचर बरतत सबै जोति ब्रह्म परकास।
सुनो व्रजनागरी ॥ ७ ॥

कौन ब्रह्म को जोति ग्यान कासों कहो ऊधो,
हमरे सुंदर स्याम प्रेम को मारग सूधो।
नैन बैन स्रुति नासिका मोहन रूप लखाय,
सुधि बुधि सब मुरली हरी प्रेम ठगोरी लाय।
सखा सुन स्याम के ॥ ८ ॥

यह सब सगुन उपाधि रूप निर्गुन है उनको,
निराकार[3] निर्लेप लगत नाहिं तीनों गुन को।

---

१ बिहल ह्वै धरनी परी।
२ ऊधव बैन सुनाय।
३ निरविकार निरलेप लगत नहिं।

हाथ न पाँउँ[1] न नासिका नैन बैन नहिं कान,
अच्युत जोति प्रकासहीं सकल विस्व को प्रान।
सुनो व्रजनागरी ॥ ९ ॥

जो मुख नाहिन हुतो कहो किन माखन खायो,
पायन विन गोसग कहो बन बन को धायो।
आँखिन में अजन दयो गोवरधन[2] लयो हाथ,
नन्द जसोदा पूत हैं कुँवर कान्ह व्रजनाथ।
सखा सुन स्याम के ॥ १० ॥

जाहि कहत तुम कान्ह ताहि कोउ पिता न माता,
अखिल अड ब्रह्मड विस्व उनहीं में जाता।
लीला गुन अवतार हैं धरि आये तन स्याम,
जोग जुगुति ही पाइये परब्रह्म पुर धाम[3]।
सुनो व्रजनागरी ॥ ११ ॥

ताहि बतावहु जोग जोग ऊधौ जेहि भावै
प्रेम सहित हम पास नद नदन गुन गावैं।

---

१ हाथ न पाँय।

२ गोवर्द्धन लयो हाथ।

३ पदधाम।

नैन बैन मन प्रान में मोहन गुन भरपूरि,
प्रेम पियूषहि[१] छाँडि कै कौन समेटैं धूरि।—
सखा सुन स्याम के ॥ १२ ॥

धूरि बुरी जो होय ईस क्यों सीस चढ़ावै,
धूरि क्षेत्र में आय कर्म करि हरिपद पावै।
धूरिहि तें यह तन भयो धूरिहि तें ब्रह्मंड,
लोक चतुर्दस धूरि तें सप्तद्वीप नवखंड।
सुनो ब्रजनागरी ॥ १३ ॥

कर्म धूरि की बात कर्म अधिकारी जानैं,
कर्म धूरि को आनि प्रेम अमृत में सानै।
तबही लौं सब कर्म है जब लौं[२] हरि उर नाहिं,
कर्मबद्ध सब विश्व के जीव विमुख ह्वै जाहिं।
सखा सुन स्याम के ॥ १४ ॥

तुम कर्महि कस निन्दत जासों सदगति होई,
कर्मरूप तें बली नाहि त्रिभुवन में कोई।
कर्महि ते उतपत्ति है कर्महि तें है नास,
कर्म किये तें मुक्ति है परब्रह्मपुर बास।
सुनो ब्रजनागरी ॥ १५ ॥

---

१ पियूष छाँड़ि कै।
२ जब लगि हरि उर नाहिं।

कर्म पाप अरु पुन्य लोह सोने की बेरी,
पायन बधन दोउ कोउ मानौ बहुतेरी।
ऊँच कर्म तें स्वर्ग है नीच कर्म ते भोग,
प्रेम बिना सब पचि मरें विषय वासना रोग।
सखा सुन स्याम के ॥ १६ ॥

कर्म बुरे जो होंय जोग काहे को[1] गारें,
पद्मासन सब धारि रोकि इन्द्रिन को मारें।
ब्रह्म अगिन जरि सुद्ध ह्वै सिद्धि[2] समाधि लगाय,
लीन होय सायुज्य में जोतिहि जोति समाय।
सुनो ब्रजनागरी ॥ १७ ॥

जोगी जोतिहिं भजें भक्त निज रूपहि जानें,
प्रेम पियूपहि[3] प्रगट स्यामसुन्दर उर आनें।
निर्गुन गुन जो पाइये लोग कहें यह नाहिं,
घर आयो नाग न पूजहीं बाँबी पूजन जाहिं।
सखा सुन स्याम के ॥ १८ ॥

जो उनके[4] गुन होंय बेद क्यों नेति बखानैं,
निर्गुन सगुन आतमा रचि ऊपर सुख सानैं।

---

१ कोउ काहे धारें।
२ सुन्य समाधि लगाय।
३ प्रेम पियूषं प्रगट।
४ जो हरि के गुन होय।

वेद पुरानिनि खोजि कै पायो नहि गुन एक,
गुनहूँ के गुन-होहि जो कह अकास किहि टेक।
सुनो ब्रजनागरी ॥ १९ ॥

जो उनके गुन नाहिं और गुन भये कहाँ तें,
बीज बिना तरु जमैं मोहि तुम कहो कहाँ तें।
वा गुन की परछांह री माया दर्पन बीच,
गुन तें गुन न्यारे भये अमल वारि मिलि कीच।
सखा सुन स्याम के ॥ २० ।

माया के गुन और और गुन हरि के जानो,
उन गुन को इन माँहि आनि काहे को सानो।
जाके गुन अरु रूप को जान न पायो भेद,
तातें निर्गुन ब्रह्म कों बदत उपनिषद वेद।
सुनो ब्रजनागरी ॥ २१ ॥

वेदहु हरि के रूप स्वास मुख तें जो निसरैं,
कर्म क्रिया आसक्ति सबै पिछली सुधि बिसरैं।
कर्म मध्य ढूंढै सबै किनहु न पायो देख,
कर्म रहित ह्वै पाइये तातें प्रेम निसेख।
सखा सुन स्याम के ॥ २२ ॥

ेम जो कोऊ वस्तु रूप देखत लौ लागै,
स्तु दृष्टि बिन कहाँ कहा प्रेमी अनुरागै।

तरनि चन्द्र के रूप कों गुन नहिं पायो जान,
तौ उनको कह जानिये गुनातीत भगवान।
सुनो व्रजनागरी ॥ २३ ॥

तरनि अकास प्रकास जाहिमें[१] रह्यो दुराई,
दिव्यदृष्टि बिनु कहो कौन पै देख्यौ जाई।
जिनकी वे आँखें नहीं देखें कब वह रूप,
तिन्हें साँच क्यौं ऊपजै परे कर्म के कूप।
सखा सुन स्याम के ॥ २४ ॥

जब करिये नित कर्म भक्तिहू जामें आई,
कर्म रूप कातें कहौ कौन पै छूट्यौ जाई।
क्रम क्रम कर्म सबहि किये कर्म नास ह्वै जाय,
तब आतम निहकर्म[२] ह्वै निर्गुन ब्रह्म समाय।
सुनो व्रजनागरी ॥ २५ ॥

जौ हरि के नहिं कर्म कर्मबंधन क्यों आवै,
तौ निर्गुन ह्वै वस्तु मात्र परमान बतावै।
जौ उनको परमान है तो प्रभुता [illegible] नाहिं,
निर्गुन भये अतीत के सगुन
[illegible] सखा

१ तेजमय रह्यो [illegible]
२ निष्कर्म ह्वै।

जो गुन आवैं दृष्टि माँझ नहिं ईस्वर सारे,
इन सबहिन तें वासुदेव अच्युत[१] हैं न्यारे।
इन्द्री दृष्टि बिकार तें रहित अधोक्षज जोति,
सुद्ध सरूपी जान जिय तृप्ति जु तातें होति।
सुनो ब्रजनागरी ॥ २७

नास्तिक जे हैं लोग कहा जानें हित रूपै,
प्रगट भानु को छाड़ि गहैं परछाहीं धूपै।
हमकों बिन वा रूप के और न कछू सुहाय,
ज्यों करतल आमलक के कोटिक ब्रह्म दिखाय।
सखा सुन स्याम के ॥ २८ ॥

ऐसे में नन्दलाल रूप नैनन के आगे,
आय गये छबि छाय बने पियरे उर बागे।
उधौ[२] सों मुख मोरि कै बैठि सकुचि कह बात,
प्रेम अमृत मुख तें स्रवत अम्बुज नैन चुचात[३]।
तरक रसरीति की ॥ २९ ॥

अहो नाथ श्रीनाथ[४] और जदुनाथ गुसाईं,
नन्द नन्दन बिड़रात फिरति तुम बिन सब गाईं।

१ अच्युत हैं न्यारे।
२ ऊधव सों मुख मोरि कै।
३ अम्बुज नैन चुवात।
४ रमानाथ और जदुनाथ गोसाईं।

काहे न फेरि कृपाल ह्वै गो ग्वालन सुधि लेहु,
दुख जलनिधि हम बूडहीं कर अवलम्बन देहु।
निठुर ह्वै कहँ रहे ॥ ३० ॥

कोउ कहैं अहो दरस देहु पुनि वेनु बजावौ,
दुरि दुरि बन की ओट कहा हिय लोन लगावौ।
हमकों तुम पिय एक हौ तुमकों हमसी कोरि,
बहुत भाँति नीके रहो[१] प्रीति न डारौ तोरि।
एकही बार यौं ॥ ३१ ॥

कोउ कहैं अहो दरस देत पुनि लेत दुराई,
यह छल विद्या कहो कौन पिय तुम्हें सिखाई।
हम परबस आधीन हैं तातें बोलत दीन,
जल बिन कहो कैसे जियै गहिरे जल की मीन।
बिचारहु रावरे ॥ ३२ ॥

कोउ कहैं अहो स्याम कहा इतराय गये हौ,
मथुरा को अधिकार पाय महाराज भये हौ।
ऐसी कछु प्रभुता हुती जानत कोऊ नाहिं,
अबला बुद्धि हम डर गईं बली डरैं जग माहिं।
पराक्रम जानि कै ॥ ३३ ॥

---

१ बहुत भाँति के रावरे।

कोउ कहै अहो स्याम चहत मारन जो ऐसे
गिरि गोवर्धन धारि करी रच्छा तुम कैसे।
ब्याल अनल विष ज्वाल तें राखि लये सब ठौर,
अब बिरहानल दहत हो हँसि हँसि नन्दकिसोर।
चोरि चित लै गये ॥ ३४ ॥

कोउ कहै ये निठुर इन्हैं पातक नाहिं ब्यापै,
पाप पुन्य के करनहार ये ही हैं आपै।
इनके निर्दय रूप में नाहिन कछू विचित्र,
पय पीवत ही पूतना मारी बाल चरित्र।
मित्र ये कौन के ॥ ३५ ॥

कोउ कहै री आज नाहिं आगे चलि आई,
रामचन्द्र के धर्म रूप में ही निठुराई।
जग्य करावन जात हे बिस्वामित्र समीप,
मग में मारी ताड़का रघुबंसी कुलदीप।
बालही गीति यह ॥ ३६ ॥

कोउ कहै जे परम धर्म इन्द्रीजित पूरे,
लच्छ लच्छ सधान धरे आयुध के रूरे।
सीताजू के कहे तें सूपनखा* पै कोपि,
छेदि अंग बिरूप कै लोगन लज्जा लोपि।
कहा ताकी कथा ॥ ३७ ॥

* सूर्पनखा पै कोपि।

कोउ कहै री सुनौ और इनके गुन आली,
बलि राजा पै गये भूमि माँगन बनमाली।
माँगत बामन रूप धरि नापत करी कुदाँव
सत्य धर्म सब छाँडि कै धर्यौ पीठ पै पाँव।
लोभ की नाव ये ॥ ३८ ॥

कोउ कहै री कहा हिरनकस्यप तैं बिगर्यौ,
परम ढीठ प्रहलाद पिता के सनमुख झगर्यौ।
सुत अपने को देत हो सिच्छा खभ बँधाय,
इन बपु धरि नरसिंह को नखन बिदार्यौ जाय।
बिना अपराध ही ॥ ३९ ॥

कोउ कहै इन परसुराम ह्वै माता मारी,
फरसा काँधे धरी भूमि छत्रिन सघारी।
सोनित कुण्ड भराय के पोपे अपने पित्र,
इनके निर्दय रूप मैं नाहिन कछू विचित्र।
बिलग कह मानिये ॥ ४० ॥

कोउ कहै री कहा दोप सिसुपाल नरेसै,
ब्याह करन कौ गयौ नृपति भीपम के देसै।
दलबल जोरि बरात कौ ठाढे है छवि बाढि,
इन छल करि दुलही हरी छुधित ग्रास मुख काढि।
आपने स्वारथी ॥ ४१ ॥

यहि विधि होत आवेस परम प्रेमहिं अनुरागी,
और रूप पिय चरित तहाँ ते देखन लागी।
रोम रोम रहे व्यापि कै जिनके मोहन आय,
तिनके भूत भविष्य का जानत कौन दुराय।
रँगीली प्रेम की ॥ ४२ ॥

देखत इनको प्रेम नेम उगो¹ को भाज्यौ,
तिमिर भाव आवेस बहुत अपने मन लाज्यौ।
मन में कह रज पाय कै ले माथे निज धारि,
हो तो कृतकृत ह्वै रह्यौं त्रिभुवन आनँद वारि।
बदना जोग ये ॥ ४३ ॥

कबहुँ कहे गुन गाय स्याम के इनहि रिझाऊँ,
प्रेम भक्ति तें भले स्यामसुन्दर को पाऊँ।
जिहि विधि मोपै रीझहीं सो विधि करा बनाय,
ताते मो मन सुद्ध ह्वै दुविधा ग्यान मिटाय।
पाय रस प्रेम को ॥ ४४ ॥

ताही छिन इक भँवर कहूँ तें उडि तहँ आयो,
व्रज वनितन के पुज माँहि गुंजत छवि छायो।

१ ऊधव को भाज्यो

बैठ्यौ चाहत पायँ पर अरुन कमल दल जानि,
मनु मधुकर ऊधौ[१] भयौ प्रथमहि प्रगट्यौ आनि।
मधुप को भेस धरि ॥ ४५ ॥

ताहि भँवर सों कहैं सबै प्रति उत्तर बातैं,
तर्क वितर्कनि-जुक्त-प्रेमरस-रूपी घातैं।
जनि परसौ मम पाँव रे तुम मानत हम चोर,
तुमही सों कपटी हुते मोहन नंदकिसोर।
यहाँ तें दूरि हो ॥ ४६ ॥

कोउ कहै री बिस्व माँझ जेते हैं कारे,
कपट कुटिल की कोटि परम मानुष मसिहारे।
एक स्याम तन परसि कै जरत आजु लौं अंग,
ता पाछे यह मधुपहू लायो जोग भुवंग।
कहाँ इनको दया ॥ ४७ ॥

कोउ कहै री मधुप भेस उनहीं को धार्यौ,
स्याम पीत गुंजार बैन किंकिनि झनकार्यौ।
वा पुर गोरस चोरि कै फिरि आयो यहि देस,
इनको जनि मानहु कोऊ कपटी इनको भेस।
चोरि जनि जाय कछु ॥ ४८ ॥

---

१ ऊधव भयौ।

कोउ कहै रे मधुप कहै अनुरागी तुमको,
कौने गुन को जानि यही अचरज है हमको।
कारो तन अति पातकी मुख पियरो जगनिंद,
गुन अवगुन सब आपनो आपुहि जानि अलिंद।
देखि लै आरसी ॥ ४९ ॥

कोउ कहै रे मधुप कहा तू रस को जानै,
बहुत कुसुम पै बैठि सबै आपन सम मानै।
आपन सम हमको कियो चाहत है मतिमंद,
द्विविध ग्यान उपजाय कै दुखित प्रेम आनंद।
कपट के छंद सों ॥ ५० ॥

कोउ कहै रे मधुप कहा मोहन गुन गावै,
हृदय कपट सों परम प्रेम नाहिन छवि पावै।
जानति हौ सब भाँति कै सरवस लयो चुराय,
यह बौरी ब्रजबासिनी को जो तुम्हे पतियाय।
लहे हम जानिकै ॥ ५१ ॥

कोउ कहै रे मधुप कौन कह तोहिं मधुकारी,
लिये फिरत मुख जोग गाठि काटत बेकारी।
रुधिर पान कियो बहुत कै अरुन अधर रँगरात,
अब ब्रज में आये कहा करन कौन को घात।
जात किन पातकी ॥ ५२ ॥

कोउ कहै रे मधुप प्रेम पटपद पसु देख्यो,
अबलों यहि ब्रजदेस माहिं कोउ नाहिं बिसेख्यो ।
द्वै सिंग आनन उपर रे कारो पीरो गात,
खल अमृत सम मानही अमृत देखि डरात ।
वादि यह रसिकता ॥ ५३ ॥

कोउ कहै रे मधुप ग्यान उलटो लै आयो,
मुक्ति परे जे रसिक तिन्हैं फिरि कर्म बतायो ।
वेद उपनिषद सार जो मोहन गुन गहि लेत,
तिनको आतम सुद्ध करि फिरि फिरि सुधा देत ।
जोग चटसार में ॥ ५४ ॥

कोउ कहै रे मधुप निगुन इन बहुकरि जान्यो,
तर्क वितर्कनि जुक्ति बहुत उनहीं यह आन्यो ।
पै इतनो नहि जानहीं वस्तु बिना गुन नाहिं,
निर्गुन भए अतीत के सगुन सकल जग माहिं ।
सखा सुन स्याम के ॥ ५५ ॥

कोउ कहै रे मधुप तुम्हैं लज्जा नहिं आवै,
सखा तुम्हारो स्याम कूबरीनाथ[1] कहावै ।
यह नीची[2] पदवी हुती गोपीनाथ कहाय,
अब जदुकुल पावन भयो दासी जूठन खाय ।
मरत कह बोल को ॥ ५६ ॥

---
[1] कुबरीनाम कहावै ।

कोउ कहै अहो मधुप स्याम जोगी तुम चेला,
कुबजा तीरथ जाय कियो इद्रिन को मेला।
मधुबन सुधि बिसराय कै आये गोकुल माहिं,
इहाँ सबै प्रेमी बसैं तुमरो गाहक नाहिं।
पसारो राबरे ॥ ५

कोउ कहै रे मधुप साधु मधुबन के ऐसे,
और तहाँ के सिद्ध लोग हैं ह ग्रो फँसे।
औगुन गुन गहि लेत हैं गुन को डारत मेटि,
मोहन निर्गुन को गहे तुम साधुन कौं भेंटि।
गाँठि को खोय कै ॥ ५८

कोउ कहै रे मधुप होहिं तुमसे जो सगी,
क्यों न होहिं तन स्याम सकल बातन चौरंगी।
गोकुल में जोरी कोऊ पाई नाहिं मुरारि,
मदन त्रिभंगी आपु हैं करी त्रिभंगी नारि।
रूप गुन सील की ॥ ५

यहि विधि सुमिरि गुबिन्द कहत उर्यो¹ मति गोपी,
भृंग सग्या करि कहत सकल कुल लज्जा लोपी।//

¹ गोविंद रटत ऊधव प्रति गोपी।

सा पाछे इकबार ही रोईं सकल व्रजनारि,
हा करुनामय नाथ हो केसव कृष्ण मुरारि।
फाटि हियरो चल्यो ॥ ६० ॥

उमगै जो कोउ सलिल सिन्धु ह्वै तन को धारनि,
भींजत अम्बुज-नीर कंचुकी भूषन हारनि।
ताही प्रेम प्रवाह में उधौ[१] चले बहाय,
भली ग्यान की मेंड़ ही व्रज में दीन्हीं आय।
सकल कुल तरि गयो ॥ ६१ ॥

प्रेम प्रसंसा करत सुद्ध जो भक्ति प्रकासी,
दुविधा ग्यान गिलानि मदता सिगरी नासी।
कहत मोहिं विस्मय भयो हरि के ये निज पात्र,
हौं तो कृतकृत ह्वै गयो इनके दरसन मात्र।
मेटि मल ग्यान को ॥ ६२ ॥

पुनि पुनि कहि हरि कहन बात एकान्त पठायो,
मैं इनको कछु मरम जानि एकौ नहिं पायो।
हौं तो निज मरजाद सों ग्यान कर्म कह्यो रोपि,
ये सब प्रेमासक्ति ह्वै कुल लज्जा करि लोपि।
धन्य ये गोपिका ॥ ६३ ॥

---

१ ऊधव चले बहाय।

जो ऐसे मरजाद मेटि मोहन को ध्यावैं,
काहे न परमानद प्रेम पद पी कौं पावें।
ग्यान जोग सब कर्म तें प्रेम परे है साँच,
हौं यहि पटतर देत हों हीरा आगे काँच।
विषमता बुद्धि की ॥ ६४ ॥

धन्य धन्य जे लोग भजत हरि कौं जो ऐसे,
और जो पारस प्रेम बिना पावत कोउ कैसे।
मेरे या लघु ग्यान कौं उर मे मद रह्यो गाय[1] ,
अब जान्यौ व्रज प्रेम को लहत न आधो आध।
वृथा स्रम करि मर्‌यौ ॥ ६५ ॥

पुनि कह सब तें साधु सग उत्तम है भाई,
पारस परसे लोह तुरत कचन है जाई।
गोपी प्रेम प्रसाद कौं हौं अब सीख्यौ आय,
ऊधव तें मधुकर भये दुबिधा ग्यान मिटाय।
पाय रस प्रेम को ॥ ६६ ॥

पुनि कहि परसत पाँय प्रथम हो इनहिं निवार्‌यौ,
भृंग सम्या करि कहत निंद सबहिन तें डार्‌यौ।

---

१ उर मद रह्यो उपाध।

अब रहिहौ ब्रजभूमि की है पग मारग धूरि,
विचरत पद मोपै परैं मव सुख जीवन मूरि।
मुनिनहूँ दुर्लभै ॥ ६७ ॥

कैस होंहु द्रुम लता बेलि बल्ली बन माहीं,
आवत जात सुभाय परैं मोपै परछाहीं।
सोऊ मेरे बस नहीं जो कछु करौं उपाय,
मोहन होहिं प्रसन्न जो यह वर माँगौं जाय।
कृपा करि देहु जू ॥ ६८ ॥

ऐसे मग अभिलाप करत मथुरा फिरि आयौ,
गदगद पुलकित रोम अग आवेस जनायौ।
गोपी गुन गावन लग्यौ मोहन गुन गयौ भूलि,
जीवन को लै का करौं पायो जीवन मूलि।
भक्ति कौ सार यह ॥ ६९ ॥

ऐसे सोचत जहाँ स्याम तहँ आयो धायो,
परिकरमा दडौत बहुत आवेस जनायो।
कछु निर्दयता स्याम की करि क्रोधित दोउ नैन,
कछु ब्रजबनिता प्रेम की बोलत रस भरि बैन।
सुनो नँदलाडिले ॥ ७० ॥

करुनामयी रसिकता है तुम्हरी सब झूँठी,
जबहीं लौं नहिं लखो तबहिं लौं बाँधी मूँठी।

मैं जान्यो व्रज जायकै तुम्हरो निर्दय रूप,
जे तुमको अवलम्बहीं तिनको मेलो कूप।
कौन यह धर्म है ॥ ७१ ॥

पुनि पुनि कहै अहो स्याम जाय वृन्दावन रहिये,
परम प्रेम को पुंज जहां गोपिन सँग लहिये।
और काम सब छाँडि कै उन लोगन सुख देहु,
नातरु टूट्यो जात है अबही नेह सनेहु।
नहीं तो करौगे तो कहा ॥ ७२ ॥

सुनत सखा के नैन नैन भरि आये दोऊ,
विवस प्रेम आवेस रही नाहीं सुधि कोऊ।
रोम रोम प्रति गोपिका ह्वै रहि साँवर गात,
कल्पतरोरुह साँवरो व्रजवनिता भई पात।
उलहि अँग अङ्ग तें ॥ ७३ ॥

ह्वै सचेत कहि भलो सखा पठयो सुधि ल्यावन,
अवगुन हमरे आनि तहाँ तें लगे बतावन।
मोमें उनमें अन्तरो एकौ छिन भरि नाहिं,
ज्यों देखो मो माहिं वे त्यों मैं उनहीं माहिं।
तरङ्गनि वारि ज्यों ॥ ७४ ॥

गोपी रूप दिखाय तबै मोहन बनवारी,
ऊधौ भ्रमहिं निवारि डारि मुख मोह की जारी।
अपनौ रूप दिखाय कै लीन्हौं बहुरि दुराय,
नन्ददास पावन भयो जो यह लीला गाय।

प्रेम रस पुजनी ॥ ७

सकरसन = बलरामजी।

२६—वर थानक = सुन्दर शोभा।

३२—गन्धलुब्ध = सुगन्ध के लोभी।

३८—मनि-मै सिंह-पीठि = मणिजटित सिंहासन।

३९—कमनीय करनिका = सुन्दर पुष्पाकार छत्री।

पुरन्दर = इन्द्र।

४०—कौस्तुभ मनि = जो हीरा भगवान् विष्णु (कृष्ण) वक्षस्थल पर पहनते हैं।

उड = नक्षत्र।

४१—अखिल अंड व्यापी = ब्रह्माण्ड में व्याप्त होनेवाला।

४३—पौगंड = दस वर्ष से सोलह वर्ष तक की अवस्था।

आक्रान्त = प्रभावित।

४६—करसत = आकर्षित करता है।

४८—सुन्दर जराय = सुन्दर जड़ने की सामग्री, कुन्दन।

५०—प्रवर = घने, अधिकता से।

छपा = रात।

५१—उडराज = चन्द्रमा।

नागर नायक = चतुर नायक।

५३—सु... ...ा के तीन से।

...गन्य।

१२—सुदेस = सुन्दर ।
जुव = युवा ।
१३—गूढ़ जानु = रहस्यपूर्ण जघाएं ।
१४—मकरन्द = पुष्परस ।
१५—मधुकर-निकर = भौंरा का समूह ।
दुरि = छिपकर ।
दिनमनि = सूर्य ।
घुमडि-घुरि = तेज़ी से घिरकर ।
१६—लोक ओक = ससार-क्षेत्र, सम्पूर्ण ससार ।
विभाकर = सूर्य ।
१७—अँधियार गार = अधकार की गुफा ।
१८—अमित गति = जिसकी गति की सीमा नहीं ।
निगम-सार = वेदशास्त्र का सार ।
सुकसार = शुकदेव का पूर्ण ज्ञान ।
१९—पचप्राण = प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, ये पाच प्राण हैं ।
२२—चिद्घन = चैतन्यस्वरूप ।
२३—नग = पहाड़ ।
विरछ = वृक्ष इत्यादि ।
२४—अविरुद्धि = विरोध-रहित होकर ।
हरि = सिंह ।
२५—सन्त = सुन्दर ।
ओभा = आभा, धूप ।
आँन = अन्य ।
२६—भ्रू विलसति = भृकुटि विलास से ।
विभूति = ऐश्वर्य ।
२७—अनन्त = शेषनाग ।

सकरसन = बलरामजी ।

३६—बर बानक = सुन्दर शोभा ।

३७—गन्धलुब्ध = सुगन्ध के लोभी ।

३८—मनि-मै सिंह-पीठि = मणिजटित सिंहासन ।

३९—कमनीय करनिका = सुन्दर पुष्पाकार छत्री ।

पुरन्दर = इन्द्र ।

४०—कौस्तुभ मनि = जो हीरा भगवान् विष्णु (कृष्ण) अपने वक्षस्थल पर पहनते हैं ।

उडु = नक्षत्र ।

४१—अखिल-अंड व्यापी = ब्रह्माण्ड में व्याप्त होनेवाला ।

४३—पौगंड = दस वर्ष से सोलह वर्ष तक की अवस्था ।

आक्रान्त = प्रभावित ।

४५—करतल = आवर्पित करना है।।

४८—सुन्दर बनाव = सुन्दर गहने की सामग्री, कुन्दन ।

५०—सघन = घने, अधिकता से ।

छपा = रात ।

५१—उडुराज = चन्द्रमा ।

नागर नायक = चतुर नायक ।

५२—कुंज रन्ध्रन = कुंजों के बीच से ।

विलन = विस्तृत, बड़ा ।

५४—उझकत हैं = प्रेमपूर्वक उचक कर झाँकना ।

५७—वामविलोचन = सुन्दर कटाक्षपूर्ण नेत्र ।

५८—परस्यो = स्पर्श किया, ग्रहण किया ।

५९—तरनि किरन = सूर्य किरण ।

पखान = पाषाण, पत्थर ।

सूर्यकान्तमणि = वह मणि जिसमें सूर्यकिरण से अग्नि प्रकट होती है ।

१६—सुरस-सनस = सुरस में सने हुए।

२०—गहयर = घनी।

२२—तनमैं = तन्मय, तल्लीन।

२४—बनि आवनि = रूप धरना, मोहकता।

२६—अरिंदर = गदा।

३०—जोवत = ध्यान करते हैं।

३२—परम कात = प्रियतम, परम सुन्दर।

३४—विलोलै = विलोगी शीशा।

३५—तरक करैं = सोचविचार कर पूछती-बताती हैं।

४२—धर = धरा पर, पृथ्वी पर।

४३—मानिनि तनु कार्छं = राधा का स्वरूप धर लिया।

४४—धासि क्रानि = कहा हो, कहा हो।

वरति = रहती है।

४८—श्रम कन = पसीने की बूंद।

४६—लोल रद छद = सुन्दर दांतों के चिन्ह, जो चुम्बन के समय कपोलों पर हुए हैं।

५०—बहुरि-बहुरि = लौटकर।

लाड लडाई = प्यार किया था।

तीसरा अध्याय

१—अवधि भूत इन्दिरा अलकृत = लक्ष्मी जो चचला आती जाती रहती है, वह भी सदैव के लिए यहां रम रही है।

३—नैन मूदिबी = आंखमिचौनी।

हासी फांसी = मुस्कान की फांसी।

७—सिल = रंगदार पत्थर।

८—प्रनत-मनोरथ = दीन दुखियों के मनोरथ।

१७—धनी धनन पर = धनीमानी के पनों पर।

६३—गुनमय सरीर बस = त्रिगुणात्मक माया के वश होकर।
मच्यो = संचित।
पच्यौ नाहिं रस = ब्रह्मानन्द-रस का प्रभाव नहीं हुआ।
६५—रंचक = थोड़ा सा।
परिरंभ = आलिंगन भेंट।
७०—विलुलित = लटकती हुई।
७३—राका-मयंक = पूर्णिमा का चन्द्र।
८०—सुरलभ = देवताओं को प्राप्त होनेवाली।
८१—ओपी = सनी हुई।
८४—अरबरैं = टकटकी लगाये हुए, इकटक।
८५—बंक चहनि = बाँकपन की रुचि।
६४—अलक-अलिन के भार = अलकों के भौंरा के भार से।
११४—गाँहन = फाँसनेवाला।
११५—चौंप = उत्सुकता।
११७—धूधरी = धुंधली।
११८—पूंट = लहरें।
१२०—पुलिन = किनारे।
१२१—छिलछिल = छिछला, उथला।
१३०—परचन = रहाना।

द्वितीय अध्याय

२—पुट = हलका रंग।
७—मनमूँसे = मन को चुराये।
६—करबीर = कनेदा।
१०—दुख-खन्डन = दुख नष्ट करनेवाले।
१२—डहडहे = आँसू भरे हुए।
१५—उत्तग = ऊँचा।

१६—सुख-मनस = सुख म सने हुए ।

२०—राहवर = धनी ।

२२—तनमे = तन्मय, तल्लीन ।

२४—थनि थायनि = रूप धरना, मोहकता ।

२६—अरिदर = गदा ।

३०—जोजत = ध्यान करते हैं ।

३२—परम कान्त = प्रियतम, परम सुन्दर ।

३४—विलोलै = बिल्लौरी शीशा ।

३५—तरक करैं = सोचविचार कर पूछती-बताती है ।

४२—धर = धरा पर, पृथ्वी पर ।

४३—मानिनि-तनु काछै = राधा का स्वरूप धर लिया ।

४४—कासि कासि = कहा हो, कहा हो ।

बदति = कहती है ।

४८—स्रम-कन = पसीने की बूंद ।

४६—लोल रद छद = सुन्दर दाता के चिन्ह, जो चुम्बन के समय कपोलों पर हुए हैं ।

५०—बहुरि-बहुरि = लौटकर ।

लाड़ लडाइ = प्यार किया था ।

तीसरा अध्याय

१—अवधि भूत इन्दिरा अलकृत = लक्ष्मी जो चचला आती जाती रहती है, वह भी सदैव के लिए यहां रम रही है ।

३—नैन-मूंदियों = आंखमिचौनी ।

हासी फासी = मुसकान की फांसी ।

७—सिल = कंकड़ पत्थर ।

८—प्रनत-मनोरथ = दीन दुखिया के मनोरथ ।

१७—पनी फनन पर = पानीनाग के फना पर ।

१६—सनै मनै = धीरे धीरे।

अटवी = झाड़ झपाड़।

तृण-कूप = तिनकों की नाकें।

२१—वितरही = प्रदान करता है।

चौथा अध्याय

१—प्रेमसुधानिधि = प्रेमसुधा का समुद्र।

अलमल बोलैं = प्रेमपूर्वक ढिठाई से बोलना।

२—दृष्टि-बन्द = नज़रबन्दी।

नटवर = ऐन्द्रजालिक, मदारी।

३—मनमथ के मन-मथ = कामदेव का भी मन मथन करनेवाले।

४—घट = शरीर।

८—पटकी = दुपट्टी, उत्तरीय वस्त्र।

दाँमन = शरीर में।

१२—दसनन = दांतों में।

ताड़ति = प्रेम से सताती है।

१४—छादन = ओढ़नी, चीर।

छाइ दयो है = बिछा दिया है।

१८—अम्बर = वस्त्र।

१६—ठकुराई = स्वामित्व, शासन।

२०—कमल-करनिका = कमल के अन्दर का कर्णफूल।

२२—भजते कौं भजें = भागते हुए का भजन करते हैं, नश्वर समार में लिप्त हैं।

बिनु भजते भजहीं = शाश्वत परब्रह्म का ध्यान करते हैं, ज्ञानी।

दोउन तजहीं = दोनों को तजते हैं, भक्त लोग, सगुण उपासक

२५—उरिनी = उऋण, उद्धार।

पचम अध्याय

३—तूल = झगटा झझट।

४—कमल-चक्र पर = कमलाकार चबूतरे पर।

५—एक काल = एक साथ।

६—रवनि = रमणी, थिरक थिरक कर नाचना।

झाई लई = प्रतिबिम्ब पड़ते हैं।

७—स्यामा स्याम = राधाकृष्ण।

११—जुरली = सम्मिलित।

१२—मुरज = मृदग।

रली = मिल रही हैं।

१३—चटकनि तारनि की = नाचते समय जो सितारे टूट टूट कर गिरते हैं।

१६—मलकन = बाँकी अदा से नाचना।

१७—ढलकनि = हिलना डुलना।

१८—करतल फिरति = नटों का एक कौतुक विशेष।

लट्टू होत चित्त = मन लट्टू होता है।

२०—चोंहि कैं = कौतुक पूर्वक।

२२—मुरली-सुर जुरकि = वशी मे अपना सुर मिलाकर।

मुरली कौ थेकि = मुरली के स्वर से भिन्न स्वर करके।

२३—दै तँबोल ढरि = कपोल चुम्बन करते समय कौतुक-वश पान की पीक लगा कर।

२७—मुरि = लचक कर।

२८—मडल डोलनि = मडलाकार नाचना।

"ता थेई" बोलनि = रासक्रीड़ा मे गान का एक सुन्दर शब्द-विशेष।

२९—थेकि = सब से ---- सब से भिन्न सुन्दर।

३१—मुरझे = फीके पड़ गये।

३७—धूँधरि = मुग्राधार।

३८—लटकि = उत्साह प्रवर्क।

४०—रति अविरुद्ध जुद्ध = अनुकूल सुरति-संग्राम।

४३—धारि धर = पृथ्वी पर।

४४—डगरी = मार्ग की ओर।

४७—ब्रीडन = लजानेवाले।

४८—मरगजी माल = कुम्हलाया हार।

मलकति = गम्भीर और धीमी सी सुन्दर गति।

४९—करनी = हथिनी।

५५—दुरि-मुरि = श्रद्धा के साथ लुक छिपकर।

५६—तन-ग्रसन = शरीर में लिपट कर।

६१—प्रकृति नाम = प्रकृतिरूपी रमणी, माया।

धरि धरि = धड़ धड़।

६५—ब्रह्म-मुहूरत = उषाकाल।

७२—विषै-विदूषित = विषय विकार से दूषित।

७५—हीनसद्ध = जिनमें श्रद्धा नहीं।

धरम-बहिर मुख = धर्म की ओर जिनकी रुचि नहीं।

७८—सप्तनिधि भेदिनि = सातों समुद्रों को भेदने वाली।

धारहिं धार रमत = सहज में पार हो जाते हैं।

टिप्पणी—२

भँवरगीत

१—प्रेम धुजा = प्रेम ध्वजा, प्रेम को ऊँचा उठानेवाली।
  स्याम विलासिनी = कृष्ण में ही सुख मानने वाली।

२—संकेत = एकान्त स्थान।
  मधुपुरी = मथुरा जी का प्राचीन नाम।

३—कंठ घुटे = गला भर आया।
  व्यवस्था = नियम, विधान।

४—अर्घासन = अर्घ देकर आसन देना।
  बलवीर = बलदाऊ जी।

५—राम = बलराम जी।

६—पग प्रायेम = रोमाञ्च, प्रेमाकुलता।
  प्रबोधहीं = होश में लाते हैं।

७—अखिल विश्व भरपूरि = "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"। सम्पूर्ण सभा ब्रह्ममय है।

८—ठगोरी = मोहित करने वाली शक्ति, जादू।

९—सगुन = सत्व, रज और तम, इन तीनों गुणों से युक्त मायास्वरूप।
  उपाधि = विकारयुक्त।
  निर्गुन = सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों से परे।

निर्लेप = जो किसी से लिप्त नहीं।

अच्युत = जो कभी च्युत न हो, अर्थात् अविनाशी।

१०—हुतो = था।

११—अड = पृथ्वीमंडल।

ब्रह्मंड = सम्पूर्ण विश्व, जिसके भीतर सभी लोक हैं।

जाता = उत्पन्न हुआ है, विनाश होता है।

लीला-गुन = लीला करने के लिए।

जोग-जुगुति = योग-साधन से।

परमपद पुर धाम = ब्रह्मपद, परम धाम।

१३—ईस = शंकर।

धूरि-छेत्र = पृथ्वी, संसार।

लोक चतुर्दस = चौदह लोक, भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक, अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल।

सप्तदीप = सप्तद्वीप, जंबू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर।

नवखंड = भरत, इलावृत, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य और कुश।

१४—कर्म-अधिकारी = कर्म फिलासफी के ज्ञाता, न्याय से सकाम भक्त।

कर्मबद्ध × × जीव बिमुख = सम्पूर्ण जीव कर्म में फँसकर ही भगवान से विमुख होते हैं।

१६—कर्म के साथ ही पाप पुण्य आ जाता है और पाप पुण्य दोनों ही लोहे और सोने की बेड़ी हैं—बेड़ी चाहे सोने ही की हो, आखिर पैरों के लिए बन्धन तो वह भी है। है कि उच कर्म से स्वर्ग मिलता है और नीच

पर वास्तव में 'प्रेम' (निष्काम भक्ति) के बिना तो इस विषयवासना-रोग में पच पच कर मरना ही है।

१७—सायुज्य = भगवान् में लीन होना।

१८—योगी ज्योति का ध्यान करते हैं, पर भक्त निज स्वरूप को जानता है—वह अपने अन्दर ही प्रेमपीयूष को प्रकट कर के श्यामली सलोनी मूर्ति को हृदय में धारण करता है। निर्गुण में तो बड़ा बखेड़ा है—उसका कोई भी लक्षण यदि हम आगे धरें, तो लोगों को सन्तोष नहीं होता। अरे घर में आया हुआ। (हमारा श्याम सुन्दर स्वरूप)—इसकी हम घृणा न करें—घर में आया हुआ नाग हम न पूजें और बाँबी (निर्गुण) को पूजने जावें। ऐसी मूर्खता कौन करेगा?

१९—नेति = वेदों में 'नेति', 'नेति' कहकर परब्रह्म का परिचय दिया गया है—अर्थात् 'यह नहीं है', 'यह नहीं'—अर्थात् जितना कुछ नाम, रूप और गुण है, उससे वह परे है।

२८—हित रूपै = सगुण का महत्व।

करतल आमलक = हथेली पर रखे हुए आँवले के समान।

२९—यागे = यज्ञ।

३०—बिहरति फिरति = व्याकुल घूमती हैं।

३४—व्याल अनल विष ज्वाल तें राखि लये सब ठौर—कालीनाग के विष तथा दावानल इत्यादि सब से रक्षा की थी।

कालीनाग की कथा—यमुना में एक कुण्ड था जिसमें कालीनाग रहता था। उसके विष की अग्नि से कुण्ड का जल सदा तप्त विषयुक्त रहता था। जो जीव भूले भटके भी उस कुण्ड के निकट चले जाते थे, कुण्ड के जल की विषैली भाफ से मर जाते थे। श्रीकृष्ण-चन्द्रजी अपने ग्वालबालों के साथ एक दिन यमुना के तट पर जाकर गेंद खेलने लगे। उन्होंने खेल में ही मित्र श्रीदामा की गेंद

कालीदह मे फेंक दी। जब श्रीदामा गेंद के लिए कृष्णजी से झगड़ने लगे, तब वे कालिया-कुण्ड में कूद पडे। वहाँ पर भगवान् कृष्णचन्द्र जी तथा कालीनाग में युद्ध हुआ। भगवान् उछलकर उस महा विष धर नाग के फन पर चढ गए। उनके बोझ से उसका अंग प्रत्यङ्ग ढीला हो गया और अन्त मे वह पराजित हो गया। कालीनाग की यह कथा श्रीमद्भागवत पुराण में श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित के पूछने पर कही है।

दावानल की कथा—एक बार श्रीकृष्णचन्द्र जी बलराम तथा अन्य ग्वालबाला सहित गायों को चराते हुए मुंज वन में जा पहुँचे। वहाँ वन म दावाग्नि लग जाने के कारण सब लोग व्याकुल हो उठे। जब अग्नि प्रतिक्षण प्रचण्डरूप धारण करती गई तो बलराम सहित समस्त ग्वालबाला ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी से रक्षा की प्रार्थना की। मित्रों की कातर वाणी सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कहा, "मित्रो! भयभीत मत हो, अपनी अपनी आँखें मीच लो।" यह सुनकर सब ने अपने अपने नेत्र मूद लिए। भगवान् उस भयकर अग्नि को पान कर गये, और अपने मित्रों की रक्षा की। यह कथा भी श्रीमद्भागवत पुराण में है।

३५—पूतना = एक राक्षसी थी जो कंस के भेजने से बालक श्रीकृष्ण को मारने के लिए गोकुल गई थी। अपने स्तनों पर उसने विष लगा लिया था जिससे श्रीकृष्ण दूध पीकर मर जायें। बालक कृष्ण पर इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। उन्होंने उसका सारा रक्त चूसकर उसे मार डाला।

३६—ताड़का = एक राक्षसी थी जिसे विश्वामित्र जी की यज्ञ-रक्षा करते हुए श्रीरामचन्द्र जी ने मारा था।

३७—स्त्रीजित = स्त्री के द्वारा जीता हुआ, स्त्री के वश।

सूपनखा—यह प्रसिद्ध राक्षसी रावण की बहिन थी। भगवान् रामचन्द्र जी के वनवास-काल में काम से पीड़ित होकर वह उनसे विवाह करने गई थी। वहाँ राम के संकेत से श्रीलक्ष्मण जी ने उसके नाक कान काट लिए थे।

३८—राजा बलि—यह विरोचन का पुत्र तथा प्रह्लाद का पौत्र दैत्यों का राजा था। भगवान् विष्णु ने वामन अवतार लेकर इससे समस्त पृथ्वी दान में ले ली और इसे पाताल भेज दिया।

वामन की कथा—अपनी उग्र तपस्या के बल से दैत्य राज बलि स्वर्ग का स्वामी बन बैठा। इससे देवताओं के राजा इन्द्र की माता अदिति को बड़ा परिताप हुआ। उसने सहायता के लिए प्रजापति कश्यप से प्रार्थना की। कश्यप ने उसे भगवान् वासुदेव की आराधना के लिए एक व्रत करने की सलाह दी।

अदिति ने कश्यप के आज्ञानुसार नियमपूर्वक व्रत का अनुष्ठान किया। तब भगवान् विष्णु ने प्रसन्न होकर अदिति के यहाँ वामन रूप में जन्म लिया। यथासमय वामन के जातकर्म तथा उपनयनादि संस्कार किए गए। एक दिन वामन ने सुना कि दैत्यराज बलि ने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया है। उस समय वे ब्राह्मण का रूप धारण करके बलि के पास गए और उससे केवल तीन पग भूमि की याचना की। दैत्य-गुरु शुक्राचार्य के मना करने पर भी बलि ने वामन भगवान को भूमि देना स्वीकार किया। इसके पश्चात् देखते देखते वामनदेव का शरीर आश्चर्यजनक रूप से बढ़ गया। दोनों पैरों से तो उन्होंने पृथ्वी और स्वर्ग नाप लिया और तीसरा पैर बलि के मस्तक पर रखकर उसे बाँध लिया। अन्त में भगवान् वामन ने बाण बलि को पाताल भेज दिया और स्वर्ग का राज्य इन्द्र को प्रदान किया।

३९—हिरन कस्यप = हिरण्यकश्यप प्रसिद्ध विष्णु विरोधी तथा दैत्यों का राजा था। भक्त प्रह्लाद इसी के पुत्र थे। भगवद्भक्ति के कारण यह प्रह्लाद को बहुत कष्ट देता था। अन्त में भगवान ने नृसिंह अवतार लेकर इसका वध किया।

नृसिंह अवतार की कथा हरिवंश पुराण, भागवत तथा विष्णु-पुराण में मिलती है। भागवत में लिखा है कि हिरण्यकश्यप वर प्राप्त कर बहुत प्रबल हुआ और स्वर्ग आदि लोकों को जीतकर राज्य करने लगा। उसके चार पुत्र थे, जिनमें प्रह्लाद विष्णु के परम भक्त थे। एक दिन हिरण्यकश्यप ने परीक्षा के लिए सब पुत्रों को अपने सामने बुलाया और कुछ सुनाने के लिए कहा। प्रह्लाद विष्णु भगवान् की महिमा गाने लगे। इस पर दैत्यराज बहुत बिगड़ा। किन्तु इसका कुछ भी परिणाम न हुआ। प्रह्लाद की भक्ति दिन पर दिन अधिक होती गई। एक दिन हिरण्यकश्यप ने कुपित होकर प्रह्लाद से पूछा—"तू किसके बल पर इतना कूदता है ?" प्रह्लाद ने कहा, "भगवान के, जिसके बल से यह सारा संसार चल रहा है।" हिरण्यकश्यप ने पूछा, "तेरा भगवान् कहाँ है ?" प्रह्लाद ने कहा, "वह सर्वत्र है।" दैत्यराज ने दाँत पीसकर पूछा, "क्या इस खंभे में भी है ?" प्रह्लाद ने कहा, 'अवश्य।' हिरण्यकश्यप खड्ग लेकर खंभे की ओर क्रोध भरी दृष्टि से देखने लगा। इतने में नृसिंह खम्भ फाड़कर निकल आए और दैत्यराज का वध किया।

४०—परसुराम = परशुराम जी बड़े क्रोधी ब्राह्मण थे। साथ ही पितृभक्ति की भी उनमें पराकाष्ठा थी। यहाँ तक कि अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए ही उन्होंने अपनी माता रेणुका तक का वध कर डाला था। क्षत्रियों से इनका वैर-भाव था। इसलिए इक्कीस बार इन्होंने क्षत्रियों से भयंकर संग्राम करके पृथ्वी को क्षत्रियरहित कर दिया था। इनकी कथा इस प्रकार है —

श्रीपरशुराम जी विष्णु के छठे अवतार माने जाते हैं। उनके पिता का नाम यमदग्नि ऋषि तथा माता का नाम रेणुका था। एक दिन माता रेणुका नदी में स्नान करने के लिए गईं। वहां गन्धर्वराज चित्ररथ को अपनी स्त्री के साथ जलक्रीडा करते देखकर उनकी काम वासना उद्दीप्त हो उठी। जब वह घर लौटीं तो उनकी दशा देखकर यमदग्नि ऋषि अत्यन्त कुपित हुए। उन्होंने अपने चारों पुत्रों को एक एक करके रेणुका के वध की आज्ञा दी, किन्तु स्नेहवश कोई वह निर्दय कार्य न कर सका। इतने में परशुराम आ पहुँचे। महर्षि ने उन्हें भी आज्ञा दी। पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर परशुराम ने माता का शिर काट डाला। यमदग्नि ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने आज्ञाकारी पुत्र से वर माँगने के लिए कहा। परशुराम ने कहा, "सर्वप्रथम तो आप मेरी माता को जिला दीजिए और इसके पश्चात् यह वरदान दीजिए कि युद्ध में मेरे सामने कोई टिक न सके।" ऋषि ने अपने पुत्र को दोनों वर प्रदान किये।

एक दिन राजा सहस्रार्जुन यमदग्नि ऋषि के आश्रम पर आये। वहाँ पर रेणुका को छोड़कर कोई दूसरा न था। राजा ने आश्रम के पेड़ पौधों को उजाड़ डाला और ऋषि की कामधेनु के बछड़े का हरण करके वहाँ से चला गया। परशुराम को जब यह समाचार मिला तब उन्होंने अपने फरसे से सहस्रार्जुन की हजारों भुजाएँ अपने फरसे से इस प्रकार काट डालीं जैसे कोई वृक्ष की शाखाओं को काट-छाँट डाले। इसके पश्चात् प्रतिहिंसा रूप में सहस्रार्जुन के कुटुम्बियों ने एक दिन यमदग्नि को मार डाला। परशुराम पितृ-वध का समाचार सुनकर अत्यन्त दुःखी हुए और उन्होंने सम्पूर्ण क्षत्रियों के नाश की प्रतिज्ञा की। इसी प्रतिज्ञा के पालन करने के लिए उन्होंने क्षत्रियों का इक्कीस बार संहार किया था।

पीछे अपने पितृ-तर्पण कर अपने पितरों को सन्तुष्ट किया।

४१—सिसुपाल=शिशुपाल चेदि देश का बड़ा अभिमानी राजा था। भगवान् श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में इसका वध किया। कथा इस प्रकार है—विदर्भ देश के राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी अत्यन्त रूपवती थी। वह हृदय में श्रीकृष्ण को ही चाहती थी, परन्तु मगध के राजा जरासन्ध की सलाह से भीष्मक अपनी कन्या का विवाह चेदि देश के राजा शिशुपाल से करना चाहता था। जब विवाह का समय आया तो रुक्मिणी ने भगवान् कृष्ण को पत्र लिखा कि अब इस सङ्कट से आप के सिवाय अन्य कोई मेरा छुटकारा करने वाला नहीं है। कृष्ण जी बलराम के साथ जा पहुँचे। विवाह से एक दिन पूर्व रुक्मिणी इन्द्राणी का पूजन करने गई। उपयुक्त अवसर देखकर श्रीकृष्ण भी वहाँ पहुँच गए और रुक्मिणी को अपने रथ पर बैठाकर वहाँ से चल दिए। जब शिशुपाल आदि राजाओं को यह समाचार मालूम हुआ तो वे युद्ध करने के लिए आ पहुँचे। श्रीकृष्ण ने उन सब को पराजित किया और रुक्मिणी को अपने महलों में लाकर विधि पूर्वक उसके साथ विवाह किया। इस पर शिशुपाल कृष्ण से द्वेष करने लगा। परन्तु कृष्ण जी की बुआ का यह लड़का था। अतएव वे बराबर क्षमा करते गये। अन्त में धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जब शिशुपाल का द्वेष चरम सीमा पर पहुँच गया, तब भगवान् कृष्ण ने सुदर्शनचक्र से उसका सिर उड़ा दिया।

४२—तिमिर भाव आवेस=अपनी अज्ञानता पर।

४३—मसिहारे=काले।

लायो जोग भुवग=योग का साँप ले आया। इस पद में गोपिकाओं ने भँवर को सम्बोधन करके श्रीकृष्ण और

उद्धव दोनों पर छींटा कसने शुरू किये हैं। भँवर, उद्धव और श्रीकृष्ण—तीनों को एक रूप माना है।

२०—द्विविध ज्ञान=निगुण सगुण का भेद, क्योंकि गोपिकाएँ अभेद भक्ति मानती हैं।

२४—सया=पाठ।

जोग चटसार=योग की पाठशाला।

२५—वस्तु बिना गुन नाहिं=अर्थात् जिसका कुछ अस्तित्व है, उसमें गुन अवश्य है। कोई भी वस्तु निर्गुन नहीं कही जा सकती, और यदि निर्गुन मान भी लिया जाय, तो वह निराकार होने से सिर्फ अतीत की ही वस्तु हो सकती है, परन्तु सगुण तो सम्पूर्ण विश्व में प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है।

२६—हुती=थी।

२७—कुबजा तीरथ=गोपियाँ कुबजा दासी को व्यंग्य से श्रीकृष्ण और उद्धव (गुरु चेले) का तीर्थ—यानी "तारनेवाला" बतलाती हैं और कहती हैं कि वहाँ जाकर तुम लोगों ने इन्द्रियों का मेला लगाया है—जैसे यात्री लोग अपने इष्ट के लिए सम्पूर्ण इन्द्रियों को एक ही जगह तल्लीन करते हैं।

२८—औगुन गुन गहि लेत हैं=अवगुण को गुण की तरह ग्रहण करते हैं।

२६—चौरंगी=चालाक, "मदन त्रिभंगी आपु हैं, करी त्रिभंगी नार"—आप स्वयं तो कामदेव की तरह सुन्दर त्रिभंगी छवि रखते हैं, परन्तु ज्या भी क्या हो स्वरूप त्रिभंगी कुब्जा कुबड़ी दासी मात्र था है ! वाह !

खूब ही जोड़ी अब यहाँ मधुवन में जाकर मिली है! गोकुल में तो कोई ऐसी "रूप, गुन, सील" वाली मिली नहीं!

६०—गोपियों के सामने भौरा तो एक निमित्तमात्र सम्बोधन के लिए रहा, परन्तु जो कुछ उन्होंने उलहना दिया, वह कृष्ण को स्मरण करके कहा, और उद्धव पर भी व्यंग्य तथा हास्य के रूप में बहुत कुछ डालती गईं। कई जगह तो उद्धव को भी साक्षात् भ्रमर के रूप में ही सम्बोधित किया है। और उद्धव आये भी थे श्रीकृष्ण की ही पोशाक करके, ऐसा श्रीमद्भागवत से प्रकट होता है। उद्धव बड़े सरस रसग्राही कृष्णभक्त थे। इसीसे उनका एक नाम "मधुकर" भी है।

६६—उद्धव स्वयं अपने आप कहते हैं कि प्रेम में किस प्रकार पागल होना चाहिए—यह शिक्षा आज मैंने यहाँ गोपियों से आकर प्राप्त की, और मेरा जो सगुण निर्गुण करके द्विविध ज्ञान था, वह आज यहाँ आकर मिट गया, और आज से प्रेम-रस का पान करके मैं सच्चा "मधुकर" बना।

७१—बाँधी मूँठी=बच्चे मुट्ठी बाँधकर खिलवाड़ में परस्पर पूछते हैं, "बतलाओ हमारी मुट्ठी में क्या है?" दूसरा बच्चा किसी वस्तु को समझकर कहता है कि यह है—इतने में मुट्ठी जतलाने वाला लड़का चट से अपनी मुट्ठी खोल देता है, तो वास्तव में उसमें कुछ नहीं निकलता! इस पर सब लड़के हँस पड़ते हैं। यही उद्धव श्रीकृष्ण से यहाँ पर कहते हैं कि—तुम बड़े करुणामय बनते हो, बड़े रसिक बनते हो, पर यह सब तुम्हारा मिथ्या आडम्बर मात्र है। तुम बँधी हुई मुट्ठी की तरह बिलकुल बने हुए—छूँछे

हो—जब तक तुम को भीतर से न देखा जाय, तभी तक तुम्हारा यह झूठा आडम्बर है। भेद खुल जाने पर तुम म कुछ भी नहीं है।

७३—उद्धव की बातें सुनकर भगवान् कृष्ण की दोनों आँखें भर आईं। गोपियों के प्रेम में वे इतने मग्न हो गये कि उन्हें कुछ भी सुधबुध नहीं रह गई। उनके श्यामले शरीर म रोमाञ्च हो आया, तो उनका एक एक रोम गोपिका बन गया। उनका सावला शरीर तो मानो कल्पवृक्ष हुआ, और उनके अंग अंग से व्रज वनिताएँ मानों पत्तों की तरह फूट पड़ीं।

७४—"डारि मुरज मोह की जारी"—सम्मोहन विद्या में मुख के ऊपर ही जादू डाली जाती है, जिसका सर्वाङ्ग पर असर होता है। "जारी" से अभिप्राय यहाँ "जाल" या जादू से है।

मुद्रक—भगवतीप्रसाद बाजपेयी, लक्ष्मी आर्ट प्रेस, दारागञ्ज, प्रयाग ।

तरुण-भारत-ग्रन्थावली

साहित्यिक और स्वास्थ्य-सम्बन्धी पुस्तकें, जो प्रत्येक पढ़ेलिखे घर में रहनी चाहिए।

(१) कालिदास और उनकी कविता—लेखक आचार्य महावीर-प्रसाद जी द्विवेदी। यदि आप महाकवि कालिदास के समय के भारतवर्ष की सैर करना चाहते हैं, यदि आप कालिदास की कविता की मार्मिक आलोचना पढ़ कर उसका रसास्वादन करना चाहते हैं, तो आचार्य द्विवेदी जी का यह ग्रन्थ अवश्य मँगाकर देखें। मूल्य १) रु०।

(२) सुभाषित और विनोद—लेखक प० गुरुनारायण जी शुक्ल। साहित्य की अनुपम छटा के साथ सुरुचिपूर्ण हास्य विनोद-सम्बन्धी यह एक अनुपम ग्रन्थ है। इसमें हजारों ऐसे हास्यविनोद-युक्त चुटकुले दिये गये हैं, जिनको पढ़ कर केवल आप का मनोरञ्जन ही नहीं होगा, बल्कि आप का चातुर्य और ज्ञान भी बढ़ेगा। स्त्रियों और बच्चों के लिए तो बहुत ही उपयोगी है। मूल्य १॥) रु०।

(३) भावविलास—टीकाकार प० लक्ष्मीनिधि जी चतुर्वेदी साहित्य-रत्न। महाकवि देव का यह ग्रन्थ क्या काव्यसौन्दर्य की दृष्टि से, और क्या रीतिग्रन्थ की दृष्टि से, हिन्दीसाहित्य में बहुत ही ऊँचे दर्जे का माना जाता है। हमने इसकी नवीन आवृत्ति सजिल्द सटीक और अर्थसहित निकाली है। देवकवि की कविता का चमत्कार देखना हो, तो इस ग्रन्थ को देखिये। मूल्य १॥) रु०।

(४) साहित्यसीकर—लेखक आचार्य महावीरप्रसाद जी द्विवेदी। इस ग्रन्थ में द्विवेदी जी के कई उपयोगी साहित्यिक निबन्धों का संग्रह है। यह ग्रन्थ हिन्दीसाहित्य-सम्मेलन तथा पंजाब की शास्त्री परीक्षा में भी पढ़ाया जाता है। हिन्दी और संस्कृत साहित्य का मार्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए इस ग्रन्थ को अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य १) रु०।

(५) साहित्यसुषमा—सम्पादक प० नन्ददुलारे वाजपेयी एम०

[illegible]

तरुण-भारत-ग्रन्थावली

साहित्यिक और स्वास्थ्य-सम्बन्धी पुस्तकें, जो प्रत्येक पढ़ेलिखे घर में रहनी चाहिए।

(१) कालिदास और उनकी कविता—लेखक आचार्य महावीर प्रसाद जी द्विवेदी। यदि आप महाकवि कालिदास के समय के भारतवर्ष की सैर करना चाहते हैं, यदि आप कालिदास की कविता का मार्मिक आलोचना पढ़ कर उसका रसास्वादन करना चाहते हैं, तो आचार्य द्विवेदी जी का यह ग्रन्थ अवश्य मँगाकर देखें। मूल्य ३) रु०।

(२) सुभाषित और विनोद—लेखक प० गुरुनारायण आचार्य। साहित्य की अनुपम छटा के साथ सुरुचिपूर्ण हास्य विनोद-सम्बन्धी यह अनुपम ग्रन्थ है। इसमें हज़ारों ऐसे हास्यविनोद-युक्त चुटकुले दिये गए हैं, जिनको पढ़ कर केवल आप का मनोरंजन ही नहीं होगा, बल्कि आप का चातुर्य और ज्ञान भी बढ़ेगा। स्त्रियों और बच्चों के लिए भी बहुत ही उपयोगी है। मूल्य १॥) रु०।

(३) भावविलास—टीकाकार प० लक्ष्मीनिधि जी चतुर्वेदी साहित्य-रत्न। महाकवि देव का यह ग्रन्थ क्या काव्यसौन्दर्य की दृष्टि से, और क्या रीतिग्रन्थ की दृष्टि से, हिन्दीसाहित्य में बहुत ही ऊँचे दर्जे का माना जाता है। हमने इसकी नवीन आवृत्ति सजिल्द सटीक और सुन्दर छापी है। देवकवि की कविता का चमत्कार देखना हो, तो इसको देखिये। मूल्य २॥) रु०।

(४) साहित्यसीकर—लेखक आचार्य महावीरप्रसाद जी द्विवेदी। इस ग्रन्थ में द्विवेदी जी के कई उपयोगी साहित्यिक निबन्धों का संग्रह है। यह ग्रन्थ हिन्दीसाहित्य-सम्मेलन तथा पंजाब की शास्त्री परीक्षा में पढ़ाया जाता है। हिन्दी और संस्कृत साहित्य के प्रेमियों को इस ग्रन्थ को अवश्य पढ़ना चाहिए।

(५) साहित्यसुषमा—सम्पादक प० नन्ददुलारे

ए० और प० लक्ष्मीनारायण जी मिश्र। काव्य, नाटक, उपन्यास, प्रहसन, इत्यादि साहित्य के भिन्न भिन्न अंगों पर हिन्दी के धुरन्धर विद्वानों के लिखे हुए विद्वत्तापूर्ण निबन्धों का ऐसा सुन्दर संग्रह हिन्दी में दूसरा नहीं है। वर्तमान काल के सभी साहित्यकारों के विशेष विशेष निबन्धों का इसमें समावेश हुआ है। पुस्तक सजिल्द है। मूल्य १॥) रु०।

(६) गोराबादल की कथा—जटमल कवि का यह प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ संवत् १६८० की रचना है। मेवाड़ की रानी पद्मावती की सतीत्व-रक्षा के लिए बारह वर्ष के बादल ने किस प्रकार की वीरता, साहस, चातुर्य और युद्धकौशल दिखलाया, इसकी वीरगाथा ओजस्विनी कविता में गाई गई है। प्रो० रामकुमार जी वर्मा एम० ए० ने विद्वत्ता-पूर्ण भूमिका लिखी है। मूल्य ।=) आने।

(७) निशीथ—लेखक "कुमारहृदय"। हिन्दी में यह एक ऐसा मौलिक और साहित्यिक सामाजिक नाटक निकला है, जो स्टेज पर बड़ी सुविधा के साथ खेला जा सकता है। कथानक बहुत ही रोचक और सुरुचिपूर्ण है। भाषा का प्रवाह, भावों का तारतम्य, कल्पना की ऊँची उड़ान देखने योग्य है। गद्यकाव्य का पूरा पूरा आनन्द उठाना हो, तो इस रूपक को मँगाकर पढ़िये और खेलिये। मूल्य ॥।) आने।

(८) गुजरात की वीराङ्गना (सरदार-बा नाटक)—लेखक "कुमार हृदय"। गुजरात की एक मनोहर ऐतिहासिक घटना को लेकर इस दृश्यकाव्य की रचना की गई है। देशप्रेम और वीररस से भरा हुआ आदर्श क्षत्रिय वीराङ्गना का पवित्र चरित्र इतने चातुर्य से चित्रित किया गया है कि देखते ही बनता है। नाटक स्टेज पर खेलने योग्य है। मूल्य सिर्फ ॥।) आने।

(९) निःश्वास—लेखिका श्रीमती रामकुमारी चौहान। रामकुमारी जी की कविताएँ करुणरस से ऐसी सराबोर होती हैं कि पढ़नेवाले का हृदय भर आता है। छायावादी ढंग की कविताओं में इनका एक

विशेष स्थान है। इसी ग्रन्थ पर नागपुर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर ५००) रु० का सेकसरियाँ महिला-पारितोषिक लेखिका को मिला है। मूल्य ॥=) आने।

(१०) अर्चना—लेखक ठाकुर चन्द्रभानुसिंह जी। ठाकुर साहब हिन्दी के एक बहुत ही होनहार और उदीयमान कवि हैं। आपकी कविताओं में वह माधुर्य, वह रस, वह ओज और वह भाव प्राबल्य है कि पाठक के चित्त को बलात् हरण कर लेता है। आपकी कविताओं में प्रकृति-सुषमा का दार्शनिक चित्रण बहुत ही अनोखे ढंग से रहता है। डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर तक ने आपकी कविताओं को पसन्द किया है। पुस्तक सजिल्द है। मूल्य १॥) रु०।

ग्रन्थावली की अन्य पुस्तकें